बड़ोंके
जीवनसे शिक्षा

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस गोरखपुर

सं० १ ११ प्रथम संस्करण १५,०
सं० २ ११ द्वितीय संस्करण १५,०

मूल्य ।=) छः आना

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

॥ श्रीहरिः ॥

मनुष्य नित्य शिक्षार्थी है और उसे सदा-सर्वदा सावधान रहकर जहाँ-तहाँसे शिक्षा ग्रहण करते रहना चाहिये। यह शिक्षा बड़ोंके जीवनसे विशेषरूपमें मिलती है और बड़े वही हैं जिनके जीवनमें दूसरोंको ऊँचा उठानेयोग्य आदर्श बातें हों। ऐसे ही बड़े पुरुषोंके जीवन-परिचयके साथ उनके जीवनके कुछ महत्त्व-पूर्ण प्रसङ्ग इस पुस्तकमें संकलित किये गये हैं। हमारे विद्वान् लेखकने यह बहुत ही सुन्दर संकलन थोड़े-से शब्दोंमें कर दिया है। आशा है, हमारे बालक और तरुण इससे विशेष लाभ उठावेंगे।

निर्जला एकादशी
२०११ वि० } हनुमानप्रसाद पोद्दार

विषय-सूची

श्रीहरिः

बड़ोंके जीवनसे शिक्षा

सत्यवादी महाराज हरिश्चन्द्र

सूर्यवंशमें त्रिशंकु बड़े प्रसिद्ध राजा हुए हैं। उनके पुत्र हुए महाराज हरिश्चन्द्र। महाराज इतने प्रसिद्ध सत्यवादी और धर्मात्मा थे कि उनकी कीर्तिसे देवताओंके राजा इन्द्रको भी डाह होने लगी। इन्द्रने महर्षि विश्वामित्रको हरिश्चन्द्रकी परीक्षा लेनेके लिये उकसाया। इन्द्रके कहनेसे महर्षि विश्वामित्रजीने राजा हरिश्चन्द्रको योगबलसे ऐसा स्वप्न दिखलाया कि राजा स्वप्नमें ऋषिको सब राज्य दान कर रहे हैं। दूसरे दिन महर्षि विश्वामित्र अयोध्या आये और अपना राज्य माँगने लगे। स्वप्नमें किये दानको भी राजाने स्वीकार कर लिया और विश्वामित्रजीको सारा राज्य दे दिया।

महाराज हरिश्चन्द्र पृथ्वीभरके सम्राट् थे। अपना पूरा राज्य उन्होंने दान कर दिया था। अब दान की हुई भूमिमें रहना उचित न समझकर स्त्री तथा पुत्रके साथ वे काशी आ गये; क्योंकि पुराणोंमें यह वर्णन है कि काशी भगवान् शङ्करके त्रिशूलपर बसी है। अतः वह पृथ्वीमें होनेपर भी पृथ्वीसे अलग मानी जाती है।

अयोध्यासे जब राजा हरिश्चन्द्र चलने लगे, तब विश्वामित्रजीने कहा—'जप, तप, दान आदि बिना दक्षिणा दिये सफल नहीं होते। तुमने इतना बड़ा राज्य दिया है तो उसकी दक्षिणामें एक हजार सोनेकी मोहरें और दो।'

राजा हरिश्चन्द्रके पास अब धन कहाँ था। राज्य दानके साथ राज्यका सब धन तो अपने आप दान हो चुका था। ऋषिसे दक्षिणा देनेके लिये एक महीनेका समय लेकर वे काशी आये। काशीमें उन्होंने अपनी पत्नी रानी शैब्याको एक ब्राह्मणके हाथ बेच दिया। राजकुमार रोहिताश्व बहुत छोटा बालक था। प्रार्थना करनेपर ब्राह्मणने उसे अपनी माताके साथ रहनेकी आज्ञा दे दी। स्वयं अपनेको राजा हरिश्चन्द्रने एक चाण्डालके हाथ बेच दिया और इस प्रकार ऋषि विश्वामित्रको एक हजार मोहरें दक्षिणामें दीं।

महारानी शैब्या अब ब्राह्मणके घरमें दासीका काम करने लगीं। चाण्डालके सेवक होकर राजा हरिश्चन्द्र श्मशानघाटकी चौकीदारी करने लगे। वहाँ जो मुर्दे जलानेको लाये जाते, उनसे कर लेकर तब उन्हें जलाने देनेका काम चाण्डालने उन्हें सौंपा था।

एक दिन राजकुमार रोहिताश्व ब्राह्मणकी पूजाके लिये फूल चुन रहा था कि उसे साँपने काट लिया। साँपका विष झटपट फैल गया और रोहिताश्व मरकर भूमिपर गिर पड़ा।

उसकी माता महारानी शैव्याको न कोई धीरज बँधानेवाला था और न उनके पुत्रकी देह श्मशान पहुँचानेवाला था। वे रोती-बिलखती पुत्रकी देहको हाथोंपर उठाये अकेली रातमें श्मशान पहुँचीं। वे पुत्रकी देहको जलाने जा रही थीं कि हरिश्चन्द्र वहाँ आ गये और मरघटका कर माँगने

लगे। बेचारी रानीके पास तो पुत्रकी देह ढकनेको कफन-तक नहीं था। उन्होंने राजाको स्वरसे पहचान लिया और गिड़गिडाकर कहने लगीं, 'महाराज! यह तो आपका ही पुत्र मरा पड़ा है। मेरे पास कर देनेको कुछ नहीं है।'

राजा हरिश्चन्द्रको बड़ा दुःख हुआ; किंतु वे अपने धर्मपर स्थिर बने रहे। उन्होंने कहा—'रानी! मैं यहाँ चाण्डालका सेवक हूँ। मेरे स्वामीने मुझे कह रखा है कि बिना कर दिये कोई यहाँ मुर्दा न जलाने पावे। मैं अपने धर्मको नहीं छोड़ सकता। तुम मुझे कुछ देकर तब पुत्र की देह जलाओ।'

रानी फूट-फूटकर रोने लगीं और बोलीं—'मेरे पास तो यही एक साड़ी है, जिसे मैं पहिने हूँ, आप इसीमेंसे आधा ले लें।' जैसे ही रानी अपनी साड़ी फाड़ने चलीं, वैसे ही वहाँ भगवान नारायण, इन्द्र, धर्मराज आदि देवता और महर्षि विश्वामित्र प्रकट हो गये। महर्षि विश्वामित्रने बताया कि कुमार रोहित मरा नहीं है। यह सब तो ऋषिने योगमायासे दिखाया था। राजा हरिश्चन्द्रको खरीदनेवाले चाण्डालके रूपमें साक्षात् धर्मराज थे।

सत्य साक्षात् नारायणका स्वरूप है। सत्यके प्रभावसे राजा हरिश्चन्द्र महारानी शैव्याके साथ भगवान्के धामको चले गये। महर्षि विश्वामित्रने राजकुमार रोहिताश्वको अयोध्याका राजा बना दिया। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्रके सम्बन्धमें यह दोहा प्रसिद्ध है—

चन्द्र टरै सूरज टरै टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़व्रत हरिश्चन्द्रको टरै न सत्य विचार॥

महाराज रघुका दान

महाराज रघु अयोध्याके सम्राट् थे । वे भगवान श्रीराम-के प्रपितामह थे । उनके नामसे ही उनके वंशके क्षत्रिय रघुवंशी कहे जाते है । एक बार महाराज रघुने एक बडा भारी यज्ञ किया । जब यज्ञ पूरा हो गया, तब महाराजने ब्राह्मणों तथा दीन-दुखियोंको अपना सब धन दान कर दिया । महाराज इतने बडे दानी थे कि उन्होंने अपने आभूषण, सुन्दर वस्त्र और सब बर्तन तक दान कर दिये । महाराजके पास साधारण वस्त्र रह गया । वे मिट्टीके बर्तनोंसे काम चलाने लगे ।

यज्ञमें जब महाराज रघु सर्वस्व दान कर चुके, तब उनके पास वरतन्तु ऋषिके शिष्य कौत्स नामके एक ब्राह्मणकुमार आये । महाराजने उनको प्रणाम किया, आसनपर बैठाया और मिट्टीके गडुवेसे उनके पैर धोये । स्वागत-सत्कार हो

आनेपर महाराजने पूछा—'आप मेरे पास कैसे पधारे हैं ! मैं क्या सेवा करूँ !'

कौत्सने कहा—'महाराज ! मैं आया तो किसी कामसे ही था; किंतु आपने तो सर्वस्व दान कर दिया है । मैं आप-जैसे महादानी उदार पुरुषको संकोचमें नहीं डालूँगा ।'

महाराज रघुने नम्रतासे प्रार्थना की—'आप अपने आनेका उद्देश्य तो बता दें !'

कौत्सने बताया कि उनका अध्ययन पूरा हो गया है । अपने गुरुदेवके आश्रमसे घर जानेसे पहले गुरुदेवसे उन्होंने गुरुदक्षिणा माँगनेकी प्रार्थना की । गुरुदेवने बड़े स्नेहसे कहा—'बेटा ! तूने यहाँ रहकर जो मेरी सेवा की है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ । मेरी गुरुदक्षिणा तो हो गयी । तू संकोच मत कर । प्रसन्नतासे घर जा ।' लेकिन कौत्सने जब गुरु-दक्षिणा देनेका हठ कर लिया, तब गुरुदेवको कुछ क्रोध आ गया । वे बोले—'तूने मुझसे चौदह विद्याएँ पढ़ी हैं, अतः प्रत्येक विद्याके लिये एक करोड़ सोनेकी मोहरें लाकर दे ।' गुरुदक्षिणाके लिये चौदह करोड़ सोनेकी मोहरें लेने कौत्स अयोध्या आये थे ।

महाराजने कौत्सकी बात सुनकर कहा—'जैसे आपने यहाँतक आनकी कृपा की है, वैसे ही मुझपर थोड़ी-सी कृपा और करें । तीन दिनतक आप मेरी अग्निशालामें ठहरें ।

रघुके यहाँसे एक ब्राह्मणकुमार निराश लौट जाय, यह तो बड़े दुःख एवं कलंककी बात होगी। मैं तीन दिनमें आपकी गुरुदक्षिणाका कोई-न-कोई प्रबन्ध अवश्य कर दूँगा।'

कौत्सने अयोध्यामें रुकना स्वीकार कर लिया। महाराजने अपने मन्त्रीको बुलाकर कहा—'यज्ञमें सभी सामन्त नरेश कर दे चुके हैं। उनसे दुबारा कर लेना न्याय नहीं है। लेकिन कुबेरजीने मुझे कभी कर नहीं दिया। वे देवता हैं तो क्या हुआ, कैलाशपर रहते हैं, इसलिये पृथ्वीके चक्रवर्ती सम्राट्को उन्हें कर देना चाहिये। मेरे सब अस्त्र-शस्त्र मेरे रथमें रखवा दो। मैं कल सबेरे कुबेरपर चढ़ाई करूँगा। आज रातको मैं उसी रथमें सोऊँगा। जबतक ब्राह्मणकुमारको गुरुदक्षिणा न मिले, मैं राजमहलमें पैर नहीं रख सकता।'

उस रात महाराज रघु रथमें ही सोये। लेकिन बड़े सबेरे उनका कोषाध्यक्ष उनके पास दौड़ा आया और कहने लगा—'महाराज! खजानेका घर सोनेकी मोहरोंसे ऊपरतक भरा पड़ा है। रातमें उसमें मोहरोंकी वर्षा हुई है।' महाराज समझ गये कि कुबेरजीने ही यह मोहरोंकी वर्षा की है। महाराजने सब मोहरोंका ढेर लगवा दिया और कौत्ससे बोले—'आप इस धनको ले जायँ!'

कौत्सने कहा—'मुझे तो गुरुदक्षिणाके लिये चौदह

करोड़ मोहरें चाहिये। उससे अधिक एक मोहर भी मैं नहीं लूँगा।'

महाराजने कहा—'लेकिन यह धन आपके लिये आया है। ब्राह्मणका धन हम अपने यहाँ नहीं रख सकते। आपको ही यह सब लेना पड़ेगा।'

कौत्सने बड़ी दृढ़तासे कहा—'महाराज! मैं ब्राह्मण हूँ। धनका मुझे करना क्या है। आप इसका चाहे जो करें, मैं तो एक मोहर अधिक नहीं लूँगा।' कौत्स चौदह करोड़ मोहरें लेकर चले गये। शेष मोहरें महाराज रघुने दूसरे ब्राह्मणोंको दान कर दीं।

महाराज दिलीपकी गो-भक्ति और गुरु-भक्ति

अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दिलीपके कोई संतान नहीं थी । एक वार वे अपनी पत्नीके साथ गुरु वसिष्ठजीके आश्रममें गये और पुत्र पानेके लिये महर्षिसे प्रार्थना की । महर्षि वसिष्ठने ध्यान करके राजाके पुत्र न होनेका कारण जान लिया और बोले—'महाराज ! आप देवराज इन्द्रसे मिलकर जब स्वर्गसे पृथ्वीपर आ रहे थे तो आपने रास्तेमें खडी कामधेनुको प्रणाम नहीं किया । शीघ्रतामें होनेके कारण आपने कामधेनुको देखा ही नहीं । कामधेनुने आपको शाप दे दिया है कि उनकी संतानकी सेवा किये बिना आपको पुत्र नहीं होगा ।'

महाराज दिलीप बोले—'गुरुदेव ! सभी गायें कामधेनुकी संतान हैं । गो-सेवा तो बडे पुण्यका काम है । मैं गायोंकी सेवा करूँगा ।'

वसिष्ठजीने बताया—'मेरे आश्रममें जो नन्दिनी नामकी गाय है, वह कामधेनुकी पुत्री है । आप उसीकी सेवा करें ।'

महाराज दिलीप सवेरे ही नन्दिनीके पीछे-पीछे वनमें गये । नन्दिनी जब खडी होती तो वे खड़े रहते, वह चलती तो उसके पीछे चलते । उसके बैठनेपर ही बैठते और उसके जल पी लेनेपर ही जल पीते । वे उसके शरीरपर एक मक्खी-तक बैठने नहीं देते थे । संध्याके समय जब नन्दिनी आश्रमको लौटती तो उसके पीछे-पीछे महाराज लौट आते ।

महारानी उस गौकी सायंकाल और प्रातःकाल पूजा करती थीं। रातको उसके पास दीपक जलाती थीं और महाराज गोशालामें गायके पास भूमिपर ही सोते थे। इस प्रकार एक महीनेतक महाराज दिलीपने बड़े परिश्रम और सावधानीसे नन्दिनीकी सेवा की।

जिस दिन महाराजको गो-सेवा करते एक महीना पूरा हो रहा था, उस दिन वनमें महाराज कुछ सुन्दर पुष्पोंको देखने लगे और इतनेमें नन्दिनी आगे चली गयी। दो चार क्षणमें ही उस गायके डकरानेकी बड़ी करुण ध्वनि सुनायी पड़ी। महाराज जब दौड़कर वहाँ पहुँचे तो देखते हैं कि एक

झरनेके पास एक बडा भारी सिंह उस सुन्दर गायको दबाये बैठा है। सिंहको मारकर गायको छुडानेके लिये महाराजने धनुष चढ़ाया, किंतु जब तरकशसे बाण निकालने चले तो दाहिना हाथ तरकशमें ही चिपक गया।

आश्चर्यमें पडे महाराज दिलीपसे सिंहने मनुष्यकी भाषामें कहा–'राजन्! मै कोई साधारण सिंह नही हूँ। मै तो भगवान शङ्करका सेवक हूँ। अब आप लौट जाइये। जिस कामके करनेमें अपना वस न चले, उसे छोड़ देनेमें कोई दोष नहीं होता। मै भूखा हूँ। यह गाय मेरे भाग्यसे ही यहाँ आ गयी है। इससे मैं अपनी भूख मिटाऊँगा।'

महाराज दिलीप बडी नम्रतासे बोले–'आप भगवान शङ्करके सेवक हैं, इसलिये मैं आपको प्रणाम करता हूँ। सत्पुरुषोंके साथ बात करने तथा थोडे क्षण भी साथ रहनेसे मित्रता हो जाती है। आपने जब कृपा करके मुझे अपना परिचय दिया है तो मेरे ऊपर इतनी कृपा और कीजिये कि इस गौको छोड दीजिये और इसके बदलेमें मुझे खाकर आप अपनी भूख मिटा लीजिये।'

सिंहने राजाको बहुत समझाया कि एक गायके लिये चक्रवर्ती सम्राट्को प्राण नहीं देना चाहिये। वे अपने गुरुको हजारों गायें दान कर सकते हैं और जीवनमें हजारों गायोंका पालन तथा रक्षा भी कर सकते हैं; किंतु महाराज दिलीप अपनी बातपर दृढ बने रहे। एक शरणागत गौ महाराजके

देखते-देखते मारी जाय, इससे उसे बचानेमें प्राण दे देना उन्हें स्वीकार था। अन्तमें सिंहने उनके बदले गायको छोड़ना स्वीकार कर लिया। महाराजका चिपका हाथ तरकससे छूट गया। उन्होंने धनुष और तरकस अलग रख दिया और सिर झुकाकर वे सिंहके आगे बैठ गये।

महाराज दिलीप समझते थे कि अब सिंह उनके ऊपर कूदेगा और उन्हें फाड़कर खा जायगा; परंतु उनके ऊपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। नन्दिनीने उन्हें मनुष्य-की भाषामें पुकारकर कहा—'महाराज! आप उठिये। यहाँ कोई सिंह नहीं है। यह तो मैंने आपकी परीक्षा लेनेके लिये माया दिखायी है। अब आप पत्तेके दोनेमें दुहकर मेरा दूध पी लीजिये। आपके गुणवान तथा प्रतापी पुत्र होगा।'

महाराज उठे। उन्होंने उस कामधेनु गौको प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले—'माता! आपके दूधपर पहले आपके बछड़ेका अधिकार है। उसके बाद बचा दूध गुरुदेवका है। आश्रम लौटनेपर गुरुदेवकी आज्ञासे ही मैं थोड़ा-सा दूध ले सकता हूँ।'

महाराजकी गुरु-भक्ति तथा धर्म-प्रेमसे नन्दिनी और भी प्रसन्न हुई। सायंकाल आश्रम लौटनेपर महर्षि वसिष्ठकी आज्ञासे महाराजने नन्दिनीका थोड़ा-सा दूध पिया। समय आनेपर महाराज दिलीपके परम प्रतापी पुत्र हुआ।

शरणागत-रक्षक महाराज शिवि

उशीनर देशके राजा शिवि एक दिन अपनी राजसभामें बैठे थे। उसी समय एक कबूतर उड़ता हुआ आया और राजाकी गोदमें गिरकर उनके कपड़ोंमें छिपने लगा। कबूतर बहुत डरा जान पड़ता था। राजाने उसके ऊपर प्रेमसे हाथ फेरा और उसे पुचकारा।

कबूतरसे थोड़े पीछे ही एक बाज उड़ता आया और वह राजाके सामने बैठ गया। बाजने मनुष्यकी बोलीमें कहा—'आप न्यायको जाननेवाले राजा हैं। आपको किसीका भोजन नहीं छीनना चाहिये। यह कबूतर मेरा भोजन है। आप इसे दे दीजिये।'

महाराज शिबिने कहा—'तुम मनुष्यकी भाषा बोलते हो। साधारण पक्षी तुम नहीं हो सकते। लेकिन तुम चाहे जो कोई हो, यह कबूतर मेरी शरणमें आया है। मैं शरणागतका त्याग नहीं करूँगा।'

बाज बोला—'मैं बहुत भूखा हूँ। आप मेरा भोजन छीनकर मेरे प्राण क्यों लेते हैं?'

राजा शिबि बोले—'तुम्हारा काम तो किसी भी मांससे चल सकता है। तुम्हारे लिये यह कबूतर ही मारा जाय, इसकी क्या आवश्यकता है। तुम्हें कितना मांस चाहिये?'

बाज कहने लगा—'महाराज! कबूतर मरे या दूसरा कोई प्राणी मरे, मांस तो किसीको मारनेसे ही मिलेगा। सब प्राणी आपकी प्रजा हैं, सब आपकी शरणमें हैं। उनमेंसे जब किसीको मारना ही है तो इस कबूतरको ही मारनेमें क्या दोष है? मैं तो ताजा मांस खानेवाला प्राणी हूँ और अपवित्र मांस मैं खाता नहीं। मुझे कोई लोभ भी नहीं है। इस कबूतरके बराबर तौलकर किसी पवित्र प्राणीका ताजा मांस मुझे दे दीजिये। मेरी भूख उतनेसे बुझ जायगी।'

राजाने विचार किया और बोले—'मैं दूसरे किसी प्राणीको नहीं मारूँगा। अपना मांस ही मैं तुमको दूँगा।'

बाज बोला—'एक कबूतरके लिये आप चक्रवर्ती सम्राट्

होकर अपना शरीर क्यों काटते हैं ? आप फिरसे सोच लीजिये।'

राजाने कहा—'बाज ! तुम्हें तो अपना पेट भरनेसे काम है। तुम मांस लो और अपनी भूख मिटाओ। मैंने सोच-समझ लिया है। मेरा शरीर कुछ अजर-अमर नहीं है। शरणमें आये एक प्राणीकी रक्षामें शरीर लग जाय, इससे अच्छा इसका दूसरा कोई उपयोग नहीं हो सकता।'

महाराजकी आज्ञासे वहाँ काँटा मँगवाया गया। एक पलड़ेमें कबूतर बैठाया गया और दूसरे पलड़ेमें महाराजने अपने हाथसे काटकर अपनी बायीं भुजा रख दी। लेकिन

कबूतरका पलड़ा भूमिसे उठा नहीं। महाराज शिबिने अपना एक पैर काटकर रखा और जब फिर भी कबूतर भारी रहा तो दूसरा पैर भी काटकर चढ़ा दिया। इतनेपर भी कबूतरका पलड़ा भूमिपर ही टिका रहा। महाराज शिबिका शरीर रक्तसे लथपथ हो गया था, लेकिन उन्हें इसका कोई दुःख नहीं। अबकी बार वे स्वयं पलड़ेपर बैठ गये और बाजसे बोले—'तुम मेरे इस देहको खाकर अपनी भूख मिटा लो।'

महाराज जिस पलड़ेपर थे, वह पलड़ा इस बार भारी होकर भूमिपर टिक गया था और कबूतरका पलड़ा ऊपर उठ गया था। लेकिन उसी समय सबने देखा कि बाज तो साक्षात् देवराज इन्द्रके रूपमें प्रकट हो गया है और कबूतर बने अग्नि देवता भी अपने रूपमें खड़े हैं। अग्नि देवताने कहा—'महाराज! आप इतने बड़े धर्मात्मा हैं कि आपकी बराबरी मैं तो क्या, विश्वमें कोई भी नहीं कर सकता।'

इन्द्रने महाराजका शरीर पहलेके समान ठीक कर दिया और बोले—'आपके धर्मकी परीक्षा लेनेके लिये हमलोगोंने यह बाज और कबूतरका रूप बनाया था। आपका यश अमर रहेगा।'

दोनों देवता महाराजकी प्रशंसा करके और उन्हें आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये।

अतिथिसेवी महाराज रन्तिदेव

महाराज संकृतिके पुत्र महाराज रन्तिदेव बडे ही अतिथि-सेवी थे। हमलोग यात्रामें थके, भूखे-प्यासे जब कोई घर देखकर वहाँ जाते हैं तो हमारे मनकी क्या दशा होती है, यह तो यात्रामें जिसे कभी थककर कहीं जाना पडा हो, उसे पता है। ऐसे अतिथिको बैठनेके लिये आसन देना, मीठी बात कहकर उसका स्वागत करना, उसे हाथ-पैर धोने तथा पीने-को जल देना और हो सके तो भोजन कराना बड़े पुण्यका काम है। जो अपने घर आये अतिथिको फटकारता और निराश करके लौटा देता है, उसके सारे पुण्य नष्ट हो जाते हैं। महाराज रन्तिदेव इतने बड़े अतिथि-सेवी थे कि अतिथिकी इच्छा जानते ही उसकी इच्छित वस्तु उसे दे देते थे। उनके

यहाँ रोज हजारों अतिथि आते थे। इस प्रकार बाँटते-बाँटते महाराजका सब धन समाप्त हो गया। वे कंगाल हो गये।

महाराज रन्तिदेवने निर्धन हो जानेपर राजमहल छोड़ दिया। स्त्री-पुत्रके साथ वे जंगलके रास्ते यात्रा करने लगे। क्षत्रियको भिक्षा नहीं माँगना चाहिये, इसलिये वनके कन्द, मूल, फल आदिसे वे अपना तथा स्त्री-पुत्रका काम चलाते थे। बिना माँगे कोई कुछ दे देता तो उसे ले लेते थे। एक बार महाराज रन्तिदेव चलते हुए ऐसे वनमें पहुँचे जहाँ भोजनके योग्य कन्द, मूल, फल तो क्या पत्ते भी नहीं थे। उस वनमें जलका नाम नहीं था। भूखसे रानी और राजकुमार छटपटाने लगे। प्यासके मारे गला सूख गया। पूरे अड़तालीस दिन तक उन लोगोंको एक बूँद जलतक नहीं मिला।

उनचासवें दिन महाराज रन्तिदेव उस वनके बाहर पहुँच गये थे। पासकी किसी बस्तीके एक मनुष्यने उन्हें आदर पूर्वक घी मिली खीर, हलुआ और शीतल जल लाकर दिया। महाराज रन्तिदेवने बड़ी शान्तिसे वह सब सामान लेकर भगवान्‌को भोग लगाया। अड़तालीस दिनके उपवाससे मरने-मरनेको हो रहे महाराजके मनमें उस समय भी यही दुःख था कि जीवनमें पहली बार आज किसी अतिथिको भोजन कराये बिना उन्हें भोजन करना पड़ेगा।

उसी समय एक ब्राह्मण वहाँ आये। वे भूखे थे।

उन्होंने भोजन माँगा । राजा रन्तिदेव बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बड़े आदरसे ब्राह्मणको भोजन कराया । जब ब्राह्मण भर पेट भोजन करके चले गये, तब बचे सामानमेंसे राजाने स्त्री और पुत्रका भाग उन्हें बाँटकर दे दिया। अपना भाग लेकर वे भोजन करने जा रहे थे कि एक भूखा शूद्र आ गया । राजाने उसे भी भोजन कराया । लेकिन शूद्रके जाते ही एक और अतिथि आ पहुँचा । उसके साथ कई कुत्ते थे । वह अतिथि और उसके कुत्ते भी भूखे

थे । राजाने सब भोजन अतिथि तथा उसके कुत्तोंको

आदरपूर्वक दे दिया। अब उनके पास थोड़ा-सा पानी बच रहा था।

राजा रन्तिदेवके भाग्यमें वह पानी भी नहीं था। प्यासके मारे उनके प्राण निकले जा रहे थे; किंतु जैसे ही वे पानी पीने चले एक चाण्डाल यह पुकारता आ पहुँचा—'महाराज! मैं चाण्डाल हूँ। प्यासके मेरे प्राण जा रहे हैं। दो घूँट जल मुझे देनेकी कृपा कीजिये।'

महाराज रन्तिदेवकी आँखोंमें आँसू आ गये। उन्होंने भगवानसे प्रार्थना की 'प्रभो! यदि मेरे इस जल-दानका कुछ पुण्य हो तो उसका फल मैं यही चाहता हूँ कि संसारके दुखी प्राणियोंका दुःख दूर हो जाय।' बड़े प्रमसे उस चाण्डालको महाराजने वह बचा हुआ पानी भी पिला दिया।

चाण्डालके जाते ही महाराज रन्तिदेव भूख-प्यासके मारे मूर्छित होकर गिर पड़े। लेकिन उसी समय वहाँ भगवान ब्रह्मा, भगवान विष्णु तथा भगवान शङ्कर और धर्मराज प्रकट हो गये। ये देवता ही ब्राह्मण, शूद्र, कुत्तसे घिरे अतिथि तथा चाण्डाल बनकर रन्तिदेवके पास आये थे। महाराज रन्तिदेवने अतिथि-सेवा-रूप धर्मके प्रभावसे ही भगवानका दर्शन प्राप्त किया।

अतिथि-सत्कार

बात बहुत पुरानी है। एक ब्राह्मणपरिवार हस्तिनापुर-के पास रहता था। उस परिवारमें ब्राह्मण, उनकी स्त्री, पुत्र और पुत्रवधू—ये चार व्यक्ति थे। किसान जब खेत काट लेते थे, तब ब्राह्मण उन खेतोंमें गिरा अन्न चुन लाते थे। उसी अन्नसे उनके परिवारका काम चलता था। ब्राह्मण और उनके परिवारके सभी लोग संतोषी, भगवानके भक्त और अतिथिकी सेवा करनेवाले थे।

एक बार देशमें अकाल पड़ गया। खेतोंमें अन्न हुआ ही नहीं। दिन-दिन भर भटकनेपर भी ब्राह्मणको इतना अन्न भी नहीं मिलता था कि जिससे एक व्यक्तिका पेट भी भर

सके। लेकिन जो कुछ अन्न मिलता था, उसे ब्राह्मणी पीस लेती थी और भगवानका भाग लगाकर चारों व्यक्ति बाँट-कर खा लेते थे। बराबर उपवास करते-करते उस परिवारके सब लोग दुबले और निर्बल हो गये थे।

एक दिन ब्राह्मण दिनभर खेतोंमें घूमता रहा। उसे बहुत थोड़े-से जौके दाने मिले। घर लौटनेपर ब्राह्मणीने वे जौ पीस लिये। कुल मुट्ठीभर आटा हुआ। उसीका भगवान का भाग लगाकर उन लोगोंने आपसमें बाँट लिया और भोजन करने बैठे। उसी समय एक भूखे ब्राह्मण अतिथि उनके दरवाजेपर आ गये। ब्राह्मणने बड़े आदरसे अतिथिको ले जाकर आसनपर बैठाया, उनके पैर धोये और अपने भागका आटा उनको भोजनके लिये दे दिया।

एक चिटकी आटेसे अतिथिका पेट कैसे भर सकता था। ब्राह्मणी वहाँ आयी और अपने भागका आटा भी उसने अतिथिको दे दिया। ब्राह्मणके पुत्रने इसके बाद अपने भागका आटा अतिथिको दिया और अन्तमें ब्राह्मणकी पुत्रवधू अपना भाग भी अतिथिको देने आयी। ब्राह्मणने पुत्रवधूसे कहा—'बेटी! तू भूखसे दुबली हो गयी है। अब और उपवास करनेसे तो तेरा जीवन ही कठिन हो जायगा। तू अपना भाग रहने दे।'

ब्राह्मणकी पुत्रवधूने कहा—'पिताजी ! अतिथि तो साक्षात् नारायणके रूप होते हैं । अतिथिकी सेवा करना परम धर्म है । मैं अपने प्राणके लोभसे अन्न रहते अतिथिको भूखा कैसे जाने दूँ । आपलोगोंने मुझे पुण्यका जो उत्तम मार्ग दिखाया है, मैं तो उसीपर चल रही हूँ ।'

ब्राह्मणकी पुत्र-वधूने अपने भागका आटा भी अतिथिके आगे धर दिया । अतिथिने उस आटेको भी फाँक लिया और जल माँगा । ब्राह्मणने जब जल लाकर अतिथिको देना

पाया तो यह देखकर आश्चर्यमें पड़ गया कि उसकी झोंपड़ी प्रकाशसे भर गयी है और उसके लिये इसके आसनपर अतिथिके बदले साक्षात् धर्मराज बैठे हैं।

अपने पुण्यके प्रभावसे ब्राह्मण अपने परिवारके साथ विमानमें बैठकर भगवानके लोकको चला गया। ब्राह्मणकी झोंपड़ीमें एक नेवला रहता था। वह नेवला उस दिन पूरी झोंपड़ीमें लेटता रहा। अतिथिने ब्राह्मणके आटेकी जब फंकी लगायी थी तो उस आटेके दो-चार कण भूमिमें गिर गये थे। उन कणोंके शरीरमें लगनेसे नेवलेका आधा शरीर सोनेका हो गया और उसे मनुष्यकी भाषा बोलनेकी शक्ति मिल गयी।

जब इन्द्रप्रस्थमें धर्मराज युधिष्ठिरने बड़ा भारी यज्ञ किया तो यज्ञके पीछे वह नेवला वहाँ आया और यज्ञभूमिमें लेटता रहा, किंतु उसके अङ्गका दूसरा भाग सोनेका नहीं बना। उस नेवलने पाण्डवोंको ऊपरकी कथा सुनाकर बताया—'महाराज युधिष्ठिर बड़े धर्मात्मा, उदार तथा अतिथिका सत्कार करनेवाले हैं; फिर भी उस दरिद्र ब्राह्मणके आटेके कणोंका प्रभाव तो अपूर्व ही था। उस ब्राह्मणके मुट्ठीभर आटेके दानकी बराबरी यह इतना बड़ा यज्ञ भी नहीं कर सकता।'

महर्षि दधीचि

महर्षि अथर्वाकी पत्नी शान्तिसे दधीचिजीका जन्म हुआ था। छोटेपनसे ही दधीचि बड़े शान्त, परोपकारी और भगवानके भक्त थे। उन्हें भगवान शङ्करका भजन करना और तपस्यामें लगे रहना, यही अच्छा लगता था। कुछ बड़े होते ही पितासे आज्ञा लेकर वे तपस्या करने चले गये और हिमालय पर्वतके एक पवित्र शिखरपर सैकड़ों वर्षोंतक तप करते रहे।

त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरने जब देवताओंको हराकर स्वर्गपर अधिकार कर लिया और देवताओंको उस असुरको जीतनेका कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा तो वे भगवान नारायणकी शरणमें गये। भगवान नारायणने देवताओंसे कहा—'वृत्रासुरको कोई भी किसी साधारण हथियारसे नहीं मार सकता। वह पहले जन्ममें शेषजीका भक्त था। उसे तो महर्षि दधीचिकी हड्डियोंसे बने वज्रके द्वारा इन्द्र ही मार सकते हैं। महर्षि दधीचिने इतनी बड़ी तपस्या की है कि उनकी हड्डियोंमें अपार शक्ति आ गयी है। वे इतने परोपकारी हैं कि माँगनेपर अपनी हड्डियाँ अवश्य दे देंगे।'

महर्षि दधीचि-जैसे तपस्वीको कोई मार तो सकता

नहीं था। देवता जानते थे कि वे क्रोध करें तो किसीको भी भस्म कर सकते हैं। इसलिये सब देवता उनके आश्रममें गये। ऋषिने देवताओंका आदर किया, उनकी पूजा की और

पूछा—'आपलोग किसलिये आये हैं ?'

देवताओंके राजा इन्द्रने कहा—'वृत्रासुरने हमारे घर-द्वार छीन लिये हैं। हमलोग बहुत दुःखी होकर आपकी शरणमें आये हैं। साधु पुरुष अपने पास आये दुःखी लोगोंका दुःख कष्ट उठाकर भी दूर करते हैं।'

महर्षि दधीचि बोले—'मैं ब्राह्मण हूँ। युद्ध करना मेरा

धर्म नहीं है। असुरने मेरा कोई अपराध किया नहीं, इसलिये उसे शाप देनेसे मुझे पाप लगेगा।'

इन्द्रने कहा—'हम सब तो आपसे यह प्रार्थना करने आये हैं कि आप अपनी हड्डियाँ दे दें तो उससे वज्र बनाकर हम वृत्रासुरको जीत लेंगे।'

प्रार्थना करके इन्द्र चुप हो गये। लेकिन महर्षि दधीचिको बडी प्रसन्नता हुई। वे बोले—'यह तो बहुत उत्तम बात है। मृत्यु तो एक दिन होनी ही है। किसीका उपकार करनेमें मृत्यु हो जाय, इससे उत्तम बात और क्या होगी। मैं अभी शरीर छोड रहा हूँ। आपलोग मेरी सब हड्डियाँ ले लें।'

महर्षिने आसन लगाया, नेत्र बंद किये और योगके द्वारा शरीर छोड दिया। जंगली गायें वहाँ आ गयीं और उन्होंने दधीचिके देहका सब चमडा, मांस आदि चाट लिया। उनकी हड्डियोंसे विश्वकर्माने वज्र बनाया। उसी वज्रसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा।

दूसरोंका उपकार करनेके लिये अपने शरीरकी हड्डियाँ-तक देनेवाले महर्षि दधीचि मरकर भी अमर हो गये। जब-तक पृथ्वी रहेगी, लोग उनका स्मरण करेंगे और आदरसे उनके लिये सिर झुकायेंगे।

एक दयालु नरेश

एक राजा बड़े धर्मात्मा और दयालु थे; किंतु उनसे भूलसे कोई एक पाप हो गया था। जब उनकी मृत्यु हो गयी तब उन्हें लेने यमराजके दूत आये। यमदूतोंने राजाको कोई कष्ट नहीं दिया। यमराजने उन्हें इतना ही कहा था कि वे राजाको आदरपूर्वक नरकोंके पाससे जानेवाले रास्तेसे ले जायें। राजाकी भूलसे जो पाप हुआ था, उसका इतना ही दण्ड था।

यमराजके दूत राजाको लेकर जब नरकोंके पास पहुँचे तो नरकमें पड़े प्राणियोंके चीखने, चिल्लाने, रोनेका शब्द सुनकर राजाका हृदय घबरा उठा। वे वहाँसे जल्दी-जल्दी जाने लगे। इसी समय नरकमें पड़े जीवोंने उनसे पुकारकर प्रार्थना की—'महाराज! आपका कल्याण हो। हमलोगोंपर दया करके आप एक घड़ी यहाँ खड़े रहिये। आपके शरीरसे लगकर जो हवा यहाँ आती है, उसके लगनेसे हमलोगोंकी जलन और पीड़ा एकदम दूर हो जाती है। हमें इससे बड़ा सुख मिल रहा है।'

राजाने उन नारकी जीवोंकी प्रार्थना सुनकर कहा—'मित्रो! यदि मेरे यहाँ खड़े रहनेसे आपलोगोंका सुख मिलता है तो मैं पत्थरकी भाँति अचल होकर यहीं खड़ा रहूँगा। मुझे यहाँसे अब आगे नहीं जाना है।'

यमदूतोंने राजासे कहा—'आप तो धर्मात्मा हैं। यह

आपके खडे होनेका स्थान नहीं है। आपके लिये तो स्वर्गमें बहुत उत्तम स्थान बनाये गये हैं। यह तो पापी जीवोंके रहनेका स्थान है। आप यहाँसे झटपट चले चलें।'

राजाने कहा—'मुझे स्वर्ग नहीं चाहिये। भूखे-प्यासे रहना और नरककी आगमें जलते रहना मुझे बहुत अच्छा लगेगा, यदि अकेले मेरे दुःख उठानेसे इन सब लोगोंको सुख मिले। प्राणियोंकी रक्षा करने और उन्हें सुखी करनेमें जो सुख है, वैसा सुख तो स्वर्ग या ब्रह्मलोकमें भी नहीं है।'

उसी समय वहाँ धर्मराज तथा इन्द्र आये। धर्मराजने

कहा—'राजन्! मैं आपको स्वर्ग ले जानेके लिये आया हूँ। अब आप चलें।'

राजाने कहा—'जबतक ये नरकमें पड़े जीव इस कष्टसे नहीं छूटेंगे, मैं यहाँसे कहीं नहीं जाऊँगा।'

धर्मराज बोले—'ये सब पापी जीव हैं। इन्होंने कोई पुण्य नहीं किया है। ये नरकसे कैसे छूट सकते हैं।'

राजाने कहा—'मैं अपना सब पुण्य इन लोगोंको दान कर रहा हूँ। आप इन लोगोंको स्वर्ग ले जायें। इनके बदले मैं अकेला नरकमें रहूँगा।'

राजाकी बात सुनकर देवराज इन्द्रने कहा—'आपके पुण्यको पाकर नरकके प्राणी दुःखोंसे छूट गये हैं। देखिये, वे लोग अब स्वर्ग जा रहे हैं। अब आप भी स्वर्ग चलिये।'

राजाने कहा—'मैंने तो अपना सब पुण्य दान कर दिया। अब आप मुझे स्वर्गमें चलनेको क्यों कहते हैं?'

देवराज इन्द्र हँसकर बोले—'दान करनेसे वस्तु घटती नहीं, बढ़ जाती है। आपने इतने पुण्योंका दान किया, यह दान उन सबसे बड़ा पुण्य हो गया। अब आप हमारे साथ पधारें।' दुःखी प्राणियोंपर दया करनेसे वे नरेश अनन्त कालतक स्वर्गका सुख भोगते रहे।

लिखित मुनिकी सचाई

शंख और लिखित नामके दो मुनि थे। दोनों सगे भाई थे। दोनों अलग-अलग आश्रम बनाकर रहते थे और भगवान-का भजन करते थे। ये दोनों मुनि धर्मशास्त्रके बड़े भारी विद्वान थे। इन्होंने स्मृतियाँ बनायी हैं। शंख मुनि बड़े भाई थे और लिखित मुनि छोटे। एक बार लिखित मुनि अपने बड़े भाई शंख मुनिसे मिलने उनके आश्रममें गये। शंख मुनि उस समय वनमें गये थे। लिखित मुनि भूखे थे, उन्होंने अपने बड़े भाईके आश्रमके वृक्षोंमेंसे एक वृक्षका एक पका हुआ फल तोड़ा और उसे खाने लगे। इतनेमें शंख मुनि वहाँ आये। अपने छोटे भाईको आया देखकर उन्हें प्रसन्नता हुई; किंतु लिखित मुनिके हाथमें फल देखकर उन्हें कुछ खेद भी हुआ। उन्होंने पूछा—'लिखित! यह फल तुम्हें कहाँ मिला?'

लिखित मुनिने कहा—'भैया ! यह तो आपके आश्रमके वृक्षसे मैंने तोड़ा है ।'

शंख मुनि बोले—'यदि कोई किसी दूसरेकी वस्तु उससे बिना पूछे ले ले तो उसका यह काम क्या कहा जायगा ?'

लिखितने कहा—'उसका यह काम चोरी कहलायेगा ?'

शंखने फिर पूछा—'कोई चोरी कर ले तो उसे क्या करना चाहिये ?'

लिखित बोले—'उसे राजाके पास जाकर अपना पाप बता देना चाहिये और पापका जो दण्ड मिले उसे भोग लेना चाहिये । दण्ड भोगनेसे पापके दोषसे वह शुद्ध हो जाता है । यदि वह इस लोकमें पापका दण्ड न भोग ले तो मरने-पर यमराजके दूत उसे पकड़कर नरकमें ले जाते हैं और बहुत दुःख देते हैं ।'

शंख मुनिने कहा—'तुमने मुझसे बिना पूछे मेरे आश्रम-के वृक्षसे फल लेकर चोरीका पाप किया है । अब तुम राजाके पास जाकर इस पापका दण्ड ले लो और तब यहाँ आना ।'

लिखित मुनि वहाँसे चलकर राजाके पास पहुँचे । राजाने उन्हें प्रणाम किया और वह स्वागत-सत्कार करने लगा; किंतु लिखित मुनिने राजाको अपना सत्कार नहीं करने दिया । उन्होंने अपना अपराध बतलाकर कहा—'आप मुझे दण्ड दीजिये ।'

राजाने कहा—'राजा जैसे दण्ड देता है, वैसे ही क्षमा भी कर सकता है। मैं आपका अपराध क्षमा करता हूँ।'

लिखित मुनि बोले—'धर्मशास्त्रके नियम मुनिलोग बनाते हैं। राजाको तो प्रजासे उन नियमोंका पालन कराना चाहिये। मैं तुमसे क्षमा लेने नहीं आया, दण्ड लेने आया हूँ। मेरे बड़े भाईने स्नेहवश मेरा कर्तव्य सुझाकर मुझे यहाँ भेजा है। मुझे अपराधका दण्ड दो।'

राजाको मुनिका हठ मानना पड़ा। उन दिनों चोरीके

अपराधका दण्ड था चोरके दानों हाथ काट लेना। राजाकी आज्ञासे जल्लादने मुनिके दानों हाथ काट लिये। हाथ कट जानेसे लिखित मुनिको कोई दुःख नहीं हुआ। वे बड़ी प्रसन्नतासे शंखमुनिके आश्रमपर लौट आये और बोले–'भैया! मैं अपराधका दण्ड ले आया।'

शंखमुनिने छोटे भाईको हृदयसे लगाया और बोले–'तुमने बड़ा अच्छा किया! आओ, अब स्नान करके दोपहरकी संध्या करें।'

नदीके जलमें स्नान करके जब तर्पण करनेके लिये लिखित मुनिने कटे हाथ आगे किये तो झट उनके हाथ पूरे निकल आये। वे समझ गये कि यह उनके बड़े भाईकी कृपाका फल है। उन्होंने बड़ी नम्रतासे पूछा–'भैया! जब मेरे हाथ उगा ही देने थे तो आपने ही उन्हें यहाँ क्यों नहीं काट दिया।'

शंखमुनि बोले–'दण्ड देना राजाका काम है। दूसरा कोई दण्ड दे तो उसे पाप होगा। लेकिन कृपा करना तो सदा ही श्रेष्ठ है। इसलिये तुम्हारे ऊपर कृपा करके मैंने तुम्हारे हाथ ठीक कर दिये।'

बिना पूछे किसीकी कोई भी वस्तु लेना चोरी है, यह बात इस कथासे भली प्रकार समझमें आ जाती है।

कर्णकी उदारता

एक बार भगवान श्रीकृष्ण पाण्डवोंके साथ बातचीत कर रहे थे। भगवान उस समय कर्णकी उदारताकी बार-बार प्रशंसा करते थे, यह बात अर्जुनको अच्छी नहीं लगी। अर्जुनने कहा—'श्यामसुन्दर! हमारे बड़े भाई धर्मराजजीसे बढ़कर उदार तो कोई है नहीं, फिर आप उनके सामने कर्णकी इतनी प्रशंसा क्यों करते हैं?'

भगवानने कहा—'यह बात मैं तुम्हें फिर कभी समझा दूँगा।'

कुछ दिनों पीछे अर्जुनको साथ लेकर भगवान श्रीकृष्ण धर्मराज युधिष्ठिरके राजभवनके दरवाजेपर ब्राह्मणका वेश बनाकर पहुँचे। उन्होंने धर्मराजसे कहा—'हमको एक मन चन्दनकी सूखी लकडी चाहिये। आप कृपा करके मँगा दें।'

उस दिन जोरकी वर्षा हो रही थी। कहींसे भी लकड़ी लानेपर वह अवश्य भीग जाती। महाराज युधिष्ठिरने नगरमें अपने सेवक भेजे; किंतु संयोगकी बात ऐसी कि कहीं भी चन्दनकी सूखी लकड़ी सेर आधसेरसे अधिक नहीं मिली। युधिष्ठिरने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'आज सूखा चन्दन मिल नहीं रहा है। आपलोग कोई और वस्तु चाहें तो तुरंत दी जा सकती है।'

भगवानने कहा—'सूखा चन्दन नहीं मिलता तो न सही। हमें कुछ और नहीं चाहिये।'

वहाँसे अर्जुनको साथ लिये उसी ब्राह्मणके वेशमें भगवान

कर्णके यहाँ पहुँचे। कर्णने बड़ी श्रद्धासे उनका स्वागत किया। भगवानने कहा—'हमें इसी समय एक मन सूखी लकड़ी चाहिये।'

कर्णने दोनों ब्राह्मणोंको आसनपर बैठाकर उनकी पूजा की। फिर धनुष चढ़ाकर उन्होंने बाण उठाया। बाण मार मारकर कर्णने अपने सुन्दर महलके मूल्यवान किवाड़, चौखटें, पलंग आदि तोड़ डाले और लकड़ियोंका ढेर लगा दिया। सब लकड़ियाँ चन्दनकी थीं। यह देखकर भगवानने

कर्णसे कहा—'तुमने सूखी लकड़ियोंके लिये इतनी मूल्यवान वस्तुएँ क्यों नष्ट कीं?'

कर्ण हाथ जोड़कर बोले—'इस समय वर्षा हो रही है।

बाहरसे लकडी मँगानेमें देर होगी। आपलोगोंको रुकना पडेगा। लकडी भीग भी जायगी। ये सब वस्तुएँ तो फिर बन जायँगी; किंतु मेरे यहाँ आये अतिथिको निराश होना पड़े या कष्ट हो तो वह दुःख मेरे हृदयसे कभी दूर नहीं होगा।'

भगवानने कर्णको यशस्वी होनेका आशीर्वाद दिया और वहाँसे अर्जुनके साथ चले आये। लौटकर भगवानने अर्जुनसे कहा—'अर्जुन! देखो, धर्मराज युधिष्ठिरके भवनके द्वार, चौखटें भी चन्दनकी हैं। चन्दनकी दूसरी वस्तुएँ भी राजभवनमें हैं। लेकिन चन्दन माँगनेपर भी उन वस्तुओंको देनेकी याद धर्मराजको नहीं आयी और सूखी लकड़ी माँगनेपर भी कर्णने अपने घरकी मूल्यवान वस्तुएँ तोड़कर लकड़ी दे दी। कर्ण स्वभावसे उदार हैं और धर्मराज युधिष्ठिर विचार करके धर्मपर स्थिर रहते हैं। मैं इसीसे कर्णकी प्रशंसा करता हूँ।'

इस कथासे हमें यह शिक्षा मिलती है कि परोपकार, उदारता, त्याग तथा अच्छे कर्म करनेका स्वभाव बना लेना चाहिये। जो लोग नित्य अच्छे कर्म नहीं करते और सोचते रहते हैं कि कोई बड़ा अवसर आनेपर वे महान त्याग या उपकार करेंगे, उनको अवसर आनेपर यह बात सूझती ही नहीं कि वह महान त्याग किया कैसे जाय। जो छोटे-छोटे अवसरों-पर भी त्याग तथा उपकार करनेका स्वभाव बना लेता है, वही महान कार्य करनेमें भी सफल होता है।

किसीका दोष न देखना

भगवान् बुद्धके एक शिष्यने एक दिन भगवानके चरणोंमें प्रणाम किया और वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। भगवानने उससे पूछा—'तुम क्या चाहते हो ?'

शिष्य—'यदि भगवान आज्ञा दें तो मैं देशमें घूमना चाहता हूँ।'

भगवान—'लोगोंमें अच्छे-बुरे सब प्रकारके मनुष्य होते हैं। बुरे लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे और तुम्हें गालियाँ देंगे। उस समय तुम्हें कैसा लगेगा ?'

शिष्य—'मैं समझ लूँगा कि वे बहुत भले लोग हैं, क्योंकि

उन्होंने मुझपर धूलि नहीं फेंकी और मुझे थप्पड़ नहीं मारे ।'

भगवान–'उनमेंसे कुछ लोग धूलि भी फेंक सकते हैं और थप्पड भी मार सकते हैं ।'

शिष्य–मैं उन्हें भी इसलिये भला समझूँगा कि वे मुझे डंडे नहीं मारते ।'

भगवान–'डंडे मारनेवाले भी दस-पाँच मनुष्य मिल सकते हैं ।'

शिष्य–'वे मुझे हथियारोंसे नहीं मारते, इसलिये वे भी मुझे भले जान पड़ेंगे ।'

भगवान–'देश बहुत बड़ा है। जंगलोंमें ठग और डाकू रहते हैं। डाकू तुम्हें हथियारोंसे भी मार सकते हैं।'

शिष्य–'वे डाकू भी मुझे दयालु जान पड़ेंगे; क्योंकि उन्होंने मुझे जीवित तो छोड़ा।'

भगवान–'यह कैसे जानते हो कि डाकू जीवित ही छोड़ देंगे। वे मार भी डाल सकते हैं।'

शिष्य–'यह संसार दुःखरूप है। इसमें बहुत दिन यहाँ जीनेसे दुःख-ही-दुःख होता है। आत्म-हत्या करना तो महा पाप है। लेकिन कोई दूसरा मार दे, तो यह तो उसकी दया ही है।'

शिष्यकी बात सुनकर भगवान बुद्ध बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा–'अब तुम पर्यटन करने योग्य हो गये हो। सच्चा साधु वही है, जो कभी किसी दशामें किसीको बुरा नहीं कहता। जो दूसरोंकी बुराई नहीं देखता। जो सबको भला ही समझता है, वही परिव्राजक होने योग्य है।'

दूसरोंको बुरा समझना और दूसरोंके दोषोंकी छान-बीन करना एक बहुत बड़ा दोष है। इस दोषसे सभीको बचे रहना चाहिये।

राजकुमार कुणालका संयम और क्षमा

सम्राट अशोकका नाम इतिहासमें प्रसिद्ध है। उनके एक पुत्रका नाम कुणाल था। राजकुमार कुणाल बड़े नम्र, विनयी, आज्ञाकारी और पितृभक्त थे। प्रजा राजकुमार कुणालको बहुत चाहती थी। राजकुमार भी प्रजाके लोगोंको सुखी करनेका ही उद्योग किया करते थे। राजकुमार कुणालकी पत्नी कचना भी पतिव्रता और सुशीला थीं।

सम्राट अशोककी छोटी रानीका नाम तिष्यरक्षिता था। सम्राट अपनी छोटी रानीको बहुत चाहते थे; किंतु उसका चरित्र अच्छा नहीं था। वह राजकुमार कुणालकी सुन्दर आँखोंपर मोहित हो गयी थी। राजकुमार अपनी सौतेली माताका आदर अपनी माताके समान ही करते थे; किंतु इससे तिष्यरक्षिताको संतोष नहीं था। एक दिन अवसर पाकर एकान्तमें वह राजकुमारसे मिली और अपने मनकी बात कहने लगी। राजकुमार कुणालने हाथ जोड़कर कहा— 'माताजी! मैं आपको अपनी सगी माताके समान मानता हूँ। अपने पुत्रसे आपको कोई अनुचित बात नहीं कहनी चाहिये।'

तिष्यरक्षिताने बहुत चेष्टा की, किंतु कुणालने उसके पैरोंको छोड़कर उसके मुखकी ओर देखा ही नहीं। अन्तमें तिष्यरक्षिता क्रोधमें भरकर बोली—'मैं तुम्हारे घमंडको चूर कर

दूँगी। तुम्हारे इन सुन्दर नेत्रोंको मैं निकलवा लूँगी। नहीं तो तुम अब भी मेरी बात मान लो।'

कुणालने कहा—'माताजी! मुझसे पाप नहीं होगा। जैसे आप जो दण्ड देंगी, उसे मैं माताका उपहार समझकर स्वीकार करूँगा।' इतना कहकर कुणाल वहाँसे चले गये। तिष्यरक्षिता क्रोधसे पागल हो गयी। उसी दिनसे वह राजकुमार कुणालसे अपने अपमानका बदला लेनेका अवसर देखने लगी।

संयोगवश तक्षशिलाके पास कुछ शत्रुओंने उपद्रव किया। सम्राट् अशोक रानी तिष्यरक्षिताकी सलाहके बिना कोई काम नहीं करते थे। रानीने सम्राट्को सलाह दी कि शत्रुओंको दबानेके लिये सेनाके साथ राजकुमार कुणालको तक्षशिला भेजना चाहिये। सम्राट्ने कुणालको तक्षशिला भेज दिया। राजकुमारकी पत्नी कंचना भी अपने पतिके साथ गयी।

राजकुमारके चले जानेपर तिष्यरक्षिताने सेनापतिके नाम एक पत्र लिखा। सम्राट् अशोक रानीपर पूरा विश्वास करते थे। राजकीय मुहरें तिष्यरक्षिताके पास रहती थीं। तिष्यरक्षिताने अपने पत्रपर सम्राट्के नामकी मुहर लगा दी और पत्र एक कर्मचारीके द्वारा तक्षशिलाके सेनापतिके पास भेज दिया।

तक्षशिलामें शत्रुओंको राजकुमारने भगा दिया था। वहाँ सभी लोग राजकुमारके व्यवहारसे उनको देवताके समान

मानने लगे थे। जब तिष्यरक्षिताका पत्र सेनापतिको मिला, सेनापतिके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। वह पत्र उसने राजकुमारको दिखाया। राजकुमार कुणालने कहा—'सेनापति! यह सम्राटका पत्र है। इसपर सम्राटकी मुहर लगी है। आप सम्राटकी आज्ञाका पालन करें।'

सेनापतिने कहा—'राजकुमार! ऐसी कठोर आज्ञाका पालन मुझसे नहीं होगा। सम्राटने पता नहीं कैसे आपकी आँखें निकालनेकी आज्ञा दे दी।'

कुणाल बोले—'आज्ञा चाहे जैसे दी गयी हो, वह सम्राट-की आज्ञा है। मुझे और आपको भी उसका पालन करना चाहिये।' लेकिन सेनापतिने राजकुमारकी आँखें फोड़ना स्वीकार नहीं किया। अन्तमें अपने पिताकी आज्ञाका सम्मान करनेके लिये राजकुमार कुणालने अपने हाथों अपने नेत्रोंमें लोहेके सूजे भोंक लिये।

अन्धे होकर राजकुमार कुणाल तक्षशिलासे चल पड़े। उनके साथ केवल उनकी पतिव्रता पत्नी कञ्चना थी। वही अपने पतिका हाथ पकड़कर आगे-आगे चलती और उनकी सेवा करती थी। चक्रवर्ती सम्राट अशोकका पुत्र अपनी पत्नीके साथ साधारण भिखारीकी भाँति गाँव-गाँव भटक रहा था। राजकुमार वीणा बजाकर गीत गाते और इससे जो कुछ मिल जाता, उसीसे उन दोनोंका काम चलता था।

भटकते-भटकते कई वर्षों बाद वे पाटलिपुत्र (पटना)

पहुँचे। राजकुमार कुणाल गा रहे थे, सम्राटने उनका स्वर पहचान लिया। वे राजमहलसे दौड़े कुणालके पास गये। इतने दिनोंके बाद सम्राटको रानी तिष्यरक्षिताकी दुष्टताका पता लगा। सम्राटने आज्ञा दी—'तिष्यरक्षिताको अभी मेरे सामने जीते ही पृथ्वीमें गाड़ दो।'

राजकुमार कुणालने सम्राटकी आज्ञा सुनते ही पृथ्वीपर मस्तक रखकर कहा—'पिताजी! वे मेरी माता हैं। मैं आपसे भिक्षा माँगता हूँ कि आप उन्हें क्षमा कर दें।' राजकुमारकी अद्भुत क्षमाशीलताने सम्राट और सभी लोगोंको चकित कर दिया।

संयमरायका अपूर्व त्याग

दिल्लीके प्रतापी राजा पृथ्वीराज और महोबेके राजा परिमालमें बहुत दिनोंसे शत्रुता थी। परिमालने अवसर पाकर पृथ्वीराजकी एक सैनिक टुकड़ीपर आक्रमण किया और उसके कुछ सैनिकोंको उन्होंने बंदी बना लिया। यह समाचार जब दिल्ली पहुँचा तो राजा पृथ्वीराज क्रोधमें भर गये। उन्होंने सेना सजायी और महोबेपर आक्रमण कर दिया।

महोबेके राजा परिमाल भी बड़े वीर थे। उनकी सेनामें आल्हा और ऊदल-जैसे वीर सामन्त थे। आल्हा-ऊदलकी वीरताका लोग अबतक वर्णन करते हैं। परिमालने आल्हा-ऊदल और अपने दूसरे सब सैनिकोंके साथ पृथ्वीराजका

सामना किया। बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। लेकिन दिल्लीकी विशाल सेनाके आगे महोबेके वीर टिक नहीं सके। राजा पृथ्वीराज विजयी हुए। महोबेकी सेना युद्धमें मारी गयी। परिमाल भी खेत रहे। लेकिन दिल्लीकी सेना भी मारी गयी और पृथ्वीराज भी घायल होकर युद्धभूमिमें गिर गये।

सची बात यह है कि उस युद्धमें कौन विजयी हुआ, यह कहना ही कठिन है। दोनों ओरके प्रायः सभी योद्धा पृथ्वीपर पड़ थे। अन्तर इतना ही था कि महोबेके राजा और उनके वीरोंने प्राण छोड़ दिये थे और पृथ्वीराज तथा उनके कुछ सरदार घायल होकर गिरे थे। वे जीवित तो थे; किंतु इतने घायल हो गये थे कि हिल भी नहीं सकते थ।

जब दोनों ओरके वीर युद्धमें मरकर या घायल होकर गिर गये और युद्धकी हलचल दूर हो गयी, वहाँ झुंड-के-झुंड गीध आकाशसे उतर पड़े। वे मरे और घायल लोगोंको नोच-नोचकर खाने लगे। उनकी आँखें और आँतें निकालने लगे। बेचारे घायल लोग चीखने और चिल्लानेको छोड़कर और क्या कर सकते थे। वे उन गीधोंको भगा सकें, इतनी शक्ति भी उनमें नहीं थी।

राजा पृथ्वीराज भी घायल होकर दूसरे घायलोंके बीचमें पड़े थ। व मूर्छित हो गये थे। गीधोंका एक झुंड उनके पास भी आया और आस-पासके लोगोंको नोच-नोचकर खाने

लगा। पृथ्वीराजके वीर सामन्त संयमराय भी युद्धमें पृथ्वी-राजके साथ आये थे और युद्धके समय पृथ्वीराजके साथ ही घायल होकर उनके पास ही गिरे थे।

सयमरायकी मूर्छा दूर हो गयी थी, किंतु वे भी इतने घायल थे कि उठ नहीं सकते थे। युद्धमें अपनी इच्छासे ही वे राजा पृथ्वीराजके अङ्ग-रक्षक बने थे। उन्होंने पडे-पडे देखा कि गीधोंका झुंड राजा पृथ्वीराजकी ओर बढ़ता जा रहा है। वे सोचने लगे—'राजा पृथ्वीराज मेरे स्वामी है। उन्होंने सदा मेरा सम्मान किया है। मुझपर वे सदा कृपा करते थे। उनकी रक्षाके लिये प्राण दे देना तो मेरा कर्तव्य ही था और युद्धमें तो मैं उनका अङ्ग-रक्षक बना था। मेरे देखते-देखते गीध उनके शरीरको नोचकर खा लें, तो मेरे जीवनको धिक्कार है।'

संयमरायने बहुत प्रयत्न किया, किंतु वे उठ नहीं सके। गीध पृथ्वीराजके पास पहुँच गये थे, अन्तमें वीर सयमराय-को एक उपाय सूझ गया। पास पडी एक तलवार किसी प्रकार खिसककर उन्होंने उठा ली और उससे अपने शरीरका मांस काट-काटकर गीधोंकी ओर फेंकने लगे। गीधोंको मांसकी कटी बोटियॉ मिलने लगीं तो वे उनको झपट्टा मारकर लेने लगे। मनुष्योंके देह नोचना उन्होंने बंद कर दिया।

राजा पृथ्वीराजकी मूर्छा टूटी। उन्होंने अपने पास

गीधोंका झुंड देखा। उन्होंने यह मी देखा कि संयमराय उन गीधोंको अपना मांस काट-काटकर खिला रहे हैं। इतनेमें पृथ्वीराजके कुछ सैनिक वहाँ आ गये। वे राजा और उनके दूसरे घायल सरदारोंको उठाकर ले जाने लगे, किंतु संयमराय अपने शरीरका इतना मांस गीधोंको काट-काटकर खिला चुके थे कि उनको बचाया नहीं जा सका। अपने कर्तव्यके पालनमें अपनी देहका मांस अपने हाथों काटकर गीधोंको देनेवाला वह वीर रण-भूमिमें सदाके लिये सो गया था।

राजा हमीरकी शरणागत-रक्षा

उस समय दिल्लीके सिंहासनपर अलाउद्दीन बादशाह था। बादशाहका एक प्यारा सरदार मुहम्मदशाह था। मुहम्मदशाहपर बादशाहकी बड़ी कृपा थी और इसीसे वह बादशाहका मुँहलगा हो गया था। एक दिन बातें करते समय हँसीमें मुहम्मदशाहने कोई ऐसी बात कह दी कि बादशाह क्रोधसे लाल हो उठा। उसने मुहम्मदशाहको फाँसीपर चढ़ा देनेकी आज्ञा दे दी।

बादशाहकी आज्ञा सुनकर मुहम्मदशाहके तो प्राण सूख गये। किसी प्रकार वह दिल्लीसे भाग निकला। अपने प्राण बचानेके लिये उसने अनेक राजाओंसे प्रार्थना की; किंतु

किसीने उसे शरण देना स्वीकार नहीं किया। बादशाहको अप्रसन्न करनेका साहस किसीका नहीं हुआ।

विपत्तिका मारा मुहम्मदशाह इधर-उधर भटक रहा था। अन्तमें वह रणथम्भौरके चौहान राजा हमीरके राज-दरबारमें गया। उसने राजासे अपने प्राण बचानेकी प्रार्थना की। राजाने कहा—'राजपूतका पहला धर्म है शरणागतकी रक्षा। आप मेरे यहाँ निश्चिन्त होकर रहें। जबतक मेरे शरीरमें प्राण हैं, कोई आपका बाल भी बाँका नहीं कर सकता।'

मुहम्मदशाह रणथम्भौरमें रहने लगा। जब बादशाह

अलाउद्दीनको इस बातका पता लगा तो उसने राजा हमीरके पास संदेश भेजा—'मुहम्मदशाह मेरा भगोड़ा है। उसे फाँसीका दण्ड हुआ है। तुम उसे तुरंत मेरे पास भेज दो।'

राजा हमीरने उत्तर भेजा—'मुहम्मदशाह मेरी शरण आया और मैंने उसे रक्षाका वचन दिया। मुझे चाहे सारे संसारसे युद्ध करना पड़े, भय या लोभमें आकर मैं शरणागतका त्याग नहीं करूँगा।'

अलाउद्दीनको राजाका पत्र पाकर बहुत क्रोध आया। उसने इसे अपमान समझा। उसने उसी समय सेनाको रणथम्भौरपर चढ़ाई करनेको कहा। टिड्डियोंके दलोंके समान पठानोंकी बड़ी भारी सेना चल पड़ी। रणथम्भौरके किलेको उस सेनाने दस मीलतक चारों ओरसे घेर लिया। अलाउद्दीनने राजाके पास फिर संदेश भेजा कि वह मुहम्मदशाहको भेज दे। बादशाह समझता था कि राजा हमीर बादशाहकी भारी सेना देखकर डर जायगा; किंतु राजा हमीरने स्पष्ट कह दिया—'मैं किसी भी प्रकार शरणागतको नहीं दूँगा।'

युद्ध प्रारम्भ हो गया। बादशाहकी सेना बहुत बड़ी थी; किंतु राजपूत वीर तो मौतसे भी दो-दो हाथ करनेको तैयार थे। भयंकर युद्ध महीनों चलता रहा। दोनों ओरके हजारों वीर मारे गये। अन्तमें एक दिन मुहम्मदशाहने स्वयं राजा हमीरसे कहा—'महाराज! मेरे कारण आप बहुत दुःख

उठा चुके। मुझसे अब आपके वीरोंका नाश नहीं देखा जाता। मैं बादशाहके पास चला जाना चाहता हूँ।'

राजा हमीर बोले—'मुहम्मदशाह! तुम फिर ऐसी बात मत कहना। जबतक मेरे शरीरमें प्राण हैं, तुम यहाँसे बादशाहके पास नहीं जा सकते। राजपूतका कर्तव्य है शरणागत-रक्षा। मैं अपने कर्तव्यका पालन प्राण देकर भी करूँगा।'

जैसे-जैसे समय बीतता गया, राजपूत सेनाके वीर घटते गये। रणथम्भौरके किलेमें भोजनसामग्री कम होने लगी। उधर अलाउद्दीनकी सेनामें दिल्लीसे आकर नयी-नयी टुकड़ियाँ बढ़ती ही जाती थीं। अन्तमें रणथम्भौरके किलेकी सब भोजन सामग्री समाप्त हो गयी। राजा हमीरने 'जौहर-व्रत' करनेका निश्चय किया। राजपूत स्त्रियाँ जलती चितामें कूद गयीं और केसरिया वस्त्र पहनकर सब राजपूत वीर किलेका फाटक खोलकर निकल पड़े। शत्रुओंसे लड़ते-लड़ते वे मारे गये। मुहम्मदशाह भी राजा हमीरके साथ ही युद्ध भूमिमें आया और युद्धमें मारा गया। विजयी बादशाह अलाउद्दीन जब रणथम्भौरके किलेमें पहुँचा तो उसे केवल जलती चिताकी राख और अंगारे मिले।

शरणागतकी रक्षाके लिये अपने सर्वस्वका बलिदान करनेवाले वीर पुरुष संसारकी इस पवित्र भारत-भूमिपर ही हुए हैं।

रघुपतिसिंहकी सचाई

अकबर बादशाहकी सेनाने राजपूतानेके चित्तौड़गढ़पर अधिकार कर लिया था। महाराणा प्रताप अरावली पर्वतके वनोंमें चले गये थे। महाराणाके साथ राजपूत सरदार भी वन एवं पर्वतोंमें जाकर छिप गये थे। महाराणा और उनके सरदार अवसर मिलते ही मुगल-सैनिकोंपर टूट पडते थे और उनमें मार-काट मचाकर फिर वनोंमें छिप जाते थे।

महाराणा प्रतापके सरदारोंमेंसे एक सरदारका नाम रघुपतिसिंह था। वह बहुत ही वीर था। अकेले ही वह चाहे जब शत्रुकी सेनापर धावा बोल देता था और जबतक मुगल-सैनिक सावधान हों, तबतक सैकड़ोंको मारकर वन-पर्वतोंमें भाग जाता था। मुगल-सेना रघुपतिसिंहके मारे घबरा उठी थी। मुगलोंके सेनापतिने रघुपतिसिंहको पकडनेवालेको बहुत बड़ा इनाम देनेकी घोषणा कर दी।

रघुपतिसिंह वनों और पर्वतोंमें घूमा करता था। एक दिन उसे समाचार मिला कि उसका इकलौता लड़का बहुत बीमार है और घडी-दो-घडीमें मरनेवाला है। रघुपतिसिंहका हृदय पुत्रको देखनेके लिये व्याकुल हो गया। वह वनमेंसे

भाड़ेपर चढ़कर निकला और अपने घरकी ओर चल पड़ा।

पूरे चित्तौड़को बादशाहके सैनिकोंने घेर रखा था। प्रत्येक दरवाजेपर बहुत कड़ा पहरा था। पहले दरवाजेपर पहुँचते ही पहरेदारने कड़ककर पूछा—'कौन है ?'

रघुपतिसिंह झूठ नहीं बोलना चाहता था। उसने अपना नाम बता दिया। इसपर पहरेदार बोला—'तुम्हें पकड़नेके लिये सेनापतिने बहुत बड़ा इनाम घोषित किया है। मैं तुम्हें बंदी बनाऊँगा।'

रघुपतिसिंह बोला—'भाई! मेरा लड़का बीमार है। वह मरनेहीवाला है। मैं उसे देखने आया हूँ। तुम मुझे अपने लड़केका मुँह देख लेने दो। मैं थोड़ी देरमें ही लौटकर तुम्हारे पास आ जाऊँगा।'

पहरेदार सिपाही बोला—'यदि तुम मेरे पास न आये तो ?'

रघुपतिसिंह—'मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि अवश्य लौट आऊँगा।'

पहरेदारने रघुपतिसिंहको नगरमें जाने दिया। वे अपने घर गये। अपनी स्त्री और पुत्रसे मिले और उन्हें आश्वासन देकर फिर पहरेदारके पास लौट आये। पहरेदार उन्हें सेनापतिके पास ले गया। सेनापतिने सब बातें सुनकर पूछा—'रघुपतिसिंह! तुम नहीं जानते थे कि पकड़ जानेपर हम

तुम्हें फाँसी दे देंगे ? तुम पहरेदारके पास दोबारा क्यों लौट आये ?'

रघुपतिसिंहने कहा—'मैं मरनेसे नहीं डरता । राजपूत वचन देकर उससे टलते नहीं और किसीके साथ विश्वासघात भी नहीं करते ।'

सेनापति रघुपतिसिंहकी सचाई देखकर आश्चर्यमें पड़ गया । उसने पहरेदारको आज्ञा दी—'रघुपतिसिंहको छोड़ दो । ऐसे सच्चे और वीरको मार देना मेरा हृदय स्वीकार नहीं करता ।'

राजकुमारकी दयालुता और सावधानी

चित्तौड़के बड़े राजकुमार चन्दा शिकार खेलने निकले थे। अपने साथियोंके साथ वे दूर निकल गये थे। उन्होंने उस दिन भीनाथद्वारेमें रात बितानेका निश्चय किया था। जब शाम होनेपर वे भीनाथद्वारेकी ओर लौटने लगे तो पहाड़ी रास्तेमें एक घोड़ा मरा हुआ पड़ा दिखायी दिया। राजकुमारने कहा—'किसी यात्रीका घोड़ा यहाँ मर गया है। घोड़ा आजका ही मरा है। यहाँसे आगे ठहरनेका स्थान तो भीनाथद्वारा ही है। वह यात्री वहीं गया होगा।'

भीनाथद्वारे पहुँचकर राजकुमारने सबसे पहले यात्रीकी खोज की। उनके मनमें एक ही चिन्ता थी कि यात्रामें घोड़ा

मर जानेसे यात्रीको कष्ट होगा। राजकुमार उसे दूसरा घोड़ा दे देना चाहते थे। लेकिन जब सेवकोंने बताया कि यात्री यहाँ नहीं आया है तो राजकुमार और चिन्तित हो गये। वे कहने लगे—'अवश्य वह यात्री मार्ग भूलकर कहीं भटक गया है। वह इस देशसे अपरिचित होना चाहिये। रात्रिमें वनमें, पता नहीं, वह कहाँ जायगा। तुमलोग टोलियाँ बनाकर जाओ और उसे ढूँढ़कर ले आओ।'

राजकुमारकी आज्ञा पाकर उनके सेवक मशालें जलाकर तीन-तीन, चार-चारकी टोलियाँ बनाकर यात्रीको ढूँढने निकल

पड़े। बहुत भटकनेपर उनमेंसे एक टालीके लोगोंको किसीने पुकारा। जब उस टालीके लोग पुकारनेवालेके पास पहुँचे तो देखा कि एक बूढ़ा और एक नवयुवक एक घोड़ेपर बहुत-सा सामान लादे पैदल चल रहे हैं। वे लोग बहुत घबराये और थके हैं। राजकुमारके सेवकोंने कहा—'आपलोग डरें नहीं। हमलोग आपको ही ढूँढ़ने निकले हैं।'

बूढ़ेने बड़े आश्चर्यसे कहा—'हमलोग तो अपरिचित हैं। विपत्तिके मारे घर-द्वार छोड़कर श्रीनाथजीकी शरण लेने निकल पड़े हैं। आज ही रास्तेमें हमारा घोड़ा गिर पड़ा और मर गया। यहाँ हमलोग रास्ता भूलकर भटक पड़े हैं। हमलोगोंको आपलोग भला कैसे ढूँढ़ने निकले हैं?'

सेवकोंने कहा—'हमारे राजकुमारने आपका मरा घोड़ा देख लिया था। वे प्रत्येक बातमें बहुत सावधानी रखते हैं। उन्होंने जान लिया कि आपलोग मार्ग भूल गये होंगे।'

एक राजकुमार इतनी सावधानी रखें और ऐसे दयालु हों, यह दोनों यात्रियोंको बहुत अद्भुत लगा। श्रीनाथद्वारे आकर उन्होंने राजकुमारके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। राजकुमार नम्रता बोले—'यह तो प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि वह सावधान रहे और कठिनाईमें पड़े लोगोंकी सहायता करे। मैंने तो अपने कर्तव्यका ही पालन किया है।'

पन्ना धायका त्याग

चित्तौड़के महाराणा संग्रामसिंहकी वीरता प्रसिद्ध है। उनके स्वर्गवासी होनेपर चित्तौडकी गद्दीपर राणा विक्रमादित्य बैठे; किंतु वे शासन करनेकी योग्यता नहीं रखते थे। उनमें न बुद्धि थी और न वीरता। इसलिये चित्तौडके सामन्तों और मन्त्रियोंने सलाह करके उनको गद्दीसे उतार दिया और महाराणा संग्रामसिंहके छोटे कुमार उदयसिंहको गद्दीपर बैठाया।

उदयसिंहकी अवस्था उस समय केवल छः वर्षकी थी। उनकी माता रानी करुणावतीका स्वर्गवास हो चुका था। पन्ना नामकी एक धाय उनका पालन-पोषण करती थी। राज्यका संचालन दासी-पुत्र बनवीर करता था। वह उदयसिंहका संरक्षक बनाया गया था।

बनवीरके मनमें राज्यका लोभ आया। उसने सोचा कि यदि विक्रमादित्य और उदयसिंहको मार दिया जाय तो सदाके लिये वह राजा बन सकेगा। सेना और राज्यका सचालन उसके हाथमें था ही। एक दिन रातमें बनवीर नंगी तलवार लेकर राजभवनमें गया और उसने सोते हुए राजकुमार विक्रमादित्यका सिर काट लिया।

जूठी पत्तलें उठानेवाले एक बारीने बनवीरको विक्रमादित्यकी हत्या करते देख लिया। वह ईमानदार और स्वामिभक्त बारी बड़ी शीघ्रतासे पन्नाके पास आया और उसने

कहा—'बनवीर राणा उदयसिंहकी हत्या करने शीघ्र ही यहाँ आयेगा। कोई उपाय करके बालक राजाके प्राण बचाओ।'

पन्ना धाय अकेली बनवीरको कैसे रोक सकती थी। उसके पास कोई उपाय सोचनेका भी समय नहीं था। लेकिन उसने एक उपाय सोच लिया। उदयसिंह उस समय सो रहे थे। उनको उठाकर पन्नाने एक टोकरीमें रख दिया और टोकरी पत्तलसे ढककर उस बारीको देकर कहा—'इसे लेकर तुम यहाँसे चले जाओ। वीरा नदीके किनारे मेरा रास्ता देखना।'

उदयसिंहको छिपाकर हटा देनेसे भी काम चलता नहीं था। बनवीरको पता लग जाय कि उदयसिंहको छिपाकर भेजा गया है तो वह घुड़सवार भेजकर उन्हें अवश्य पकड़ लेगा। पन्नाने एक दूसरा ही उपाय सोचा। उसके भी एक पुत्र था। उसके पुत्र चन्दनकी अवस्था भी छः वर्षकी थी। उसने अपने पुत्रको उदयसिंहके पलंगपर सुलाकर रेशमी चादर उढ़ा दी और स्वयं एक ओर बैठ गयी। जब बनवीर रक्तमें सनी तलवार लिये वहाँ आया और पूछने लगा—'उदयसिंह कहाँ है ?' तब पन्नाने बिना एक शब्द बोले अँगुलीसे अपने सोते लड़केकी ओर संकेत कर दिया। हत्यारे बनवीरने उसके निरपराध बालकके तलवारके एक हाथसे दो टुकड़े कर दिये और वहाँसे चला गया।

अपने स्वामीकी रक्षाके लिये अपने पुत्रका बलिदान करके बेचारी पन्ना रो भी नहीं सकती थी। उसे झटपट वहाँसे

पन्ना धायका त्याग

नदी किनारे जाना था, जहाँ बारी उदयसिंहको लिये उसका रास्ता देखता था। पन्नाने अपने पुत्रकी लाश ले जाकर नदीमें डाल दी और उदयसिंहको लेकर मेवाडसे चली गयी। उसे अनेक स्थानोंपर भटकना पडा। अन्तमें देवराके सामन्त आकाशाहने उसे अपने यहाँ आश्रय दिया।

बनवीरको अपने पापका दण्ड मिला। बडे होनेपर राणा उदयसिंह चित्तौड़की गद्दीपर बैंठे। पन्ना धाय उस समय जीवित थी। राणा उदयसिंह माताके समान उसका सम्मान करते थे। स्वामीके लिये अपने पुत्रतकका बलिदान करनेवाली पन्नामाई धन्य है!

भामाशाहका त्याग

चित्तौड़पर अकबरकी सेनाने अधिकार कर लिया था। महाराणा प्रताप अरावली पर्वतके वनोंमें अपने परिवार तथा राजपूत-सैनिकोंके साथ जहाँ-तहाँ भटकते फिरते थे। महाराणा तथा उनके छोटे बच्चोंको कभी-कभी दो-दो, तीन-तीन दिनोंतक घासके बीजोंकी बनी रोटीतक नहीं मिलती थी। चित्तौड़के महाराणा और सोनेके पलंगपर सोनेवाले उनके बच्चे भूखे-प्यासे पर्वतकी गुफाओंमें घास-पात खाते और पत्थरकी चट्टानपर सो रहते थे। लेकिन महाराणा प्रतापको इन सब कष्टोंकी चिन्ता नहीं थी। उन्हें एक ही धुन थी कि शत्रुओंसे

देशका—चित्तौड़की पवित्र भूमिका उद्धार कैसे किया जाय ।

किसीके पास काम करनेका साधन न हो तो उसका अकेला उत्साह क्या काम आवे । महाराणा प्रताप और दूसरे सैनिक भी कुछ दिन भूखे-प्यासे रह सकते थे; किंतु भूखे रहकर युद्ध कैसे चलाया जा सकता है । घोड़ोंके लिये, हथियारोंके लिये, सेनाको भोजन देनेके लिये तो धन चाहिये। महाराणाके पास फूटी कौड़ी नहीं थी । उनके राजपूत और भील-सैनिक अपने देशके लिये मर-मिटनेको तैयार थे। उन देशभक्त वीरोंको वेतन नहीं लेना था; किंतु बिना धनके घोड़े कहाँसे आवें, हथियार कैसे बनें, मनुष्यों और घोड़ोंको भोजन कैसे दिया जाय । इतना भी प्रबन्ध न हो तो दिल्लीके बादशाहकी सेनासे युद्ध कैसे चले । महाराणा प्रतापको बड़ी निराशा हो रही थी । अन्तमें एक दिन महाराणाने अपने सरदारोंसे विदा ली, भीलोंको समझाकर लौटा दिया । प्राणोंसे प्यारी जन्म-भूमिको छोड़कर महाराणा राजस्थानसे कहीं बाहर जानेको तैयार हुए ।

जब महाराणा अपने सरदारोंको रोता छोड़कर महारानी और बच्चोंके साथ वनके मार्गसे जा रहे थे, महाराणाके मन्त्री भामाशाह घोड़ा दौड़ाते आये और घोड़ेसे कूदकर महाराणाके पैरोंपर गिरकर फूट-फूटकर रोने लगे—'आप हमलोगोंको अनाथ करके कहाँ जा रहे हैं ?'

महाराणा प्रतापने मामाशाहको उठाकर हृदयसे लगाया और आँसू बहाते हुए कहा–'आज भाग्य हमारे साथ नहीं है। अब यहाँ रहनेसे क्या लाभ ? मैं इसलिये जन्म भूमि छोड़कर जा रहा हूँ कि कहीं कुछ धन मिल जाय तो उससे सेना एकत्र करके फिर चित्तौड़का उद्धार करने लौटूँ। आप लोग तबतक धैर्य धारण करें।'

मामाशाहने हाथ जोड़कर कहा–'महाराणा ! आप मेरी एक प्रार्थना मान लें।'

राणा प्रताप बड़े स्नेहसे बोले–'मन्त्री ! मैने आपकी बात कभी टाली है क्या ?'

भामाशाहके पीछे उनके बहुत-से सेवक घोड़ोंपर अशर्फियोंके थैले लादे ले आये थे। भामाशाहने महाराणाके आगे उन अशर्फियोंका बड़ा भारी ढेर लगा दिया और फिर हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतासे कहा—'महाराणा! यह सब धन आपका ही है। मैंने और मेरे बाप-दादोंने चित्तौड़के राजदरबारकी कृपासे ही इसे इकट्ठा किया है। आप कृपा करके इसे स्वीकार कर लीजिये और इससे देशका उद्धार कीजिये।'

महाराणा प्रतापने भामाशाहको हृदयसे लगा लिया। उनकी आँखोंसे आँसूकी बूँदें टपाटप गिरने लगीं। वे बोले—'लोग प्रतापको देशका उद्धारक कहते हैं, किंतु इस पवित्र भूमिका उद्धार तो तुम्हारे-जैसे उदार पुरुषोंसे होगा। तुम धन्य हो भामाशाह!'

उस धनसे महाराणा प्रतापने सेना इकट्ठी की और मुगल-सेनापर आक्रमण किया। मुगलोंके अधिकारकी बहुत-सी भूमि महाराणाने जीत ली और उदयपुरमें अपनी राजधानी बना ली।'

महाराणा प्रतापकी वीरता जैसे राजपूतानेके इतिहासमें विख्यात है, वैसे ही भामाशाहका त्याग भी विख्यात है। ऐसे त्यागी पुरुष ही देशके गौरव होते हैं।

वीर सरदार

राणा अमरसिंहने मुगल-सेनाओंके साथ वीरतापूर्वक युद्ध करनेके पुरस्कारमें सक्तावत सरदारोंको सेनाकी 'हरावल' (आगे चलने) का अधिकार दिया। लेकिन सेनाकी हरावलका अधिकार पुराने समयसे चन्दावत सरदारोंका था। जब चन्दावत सरदारको इस बातका पता लगा तो वे तुरंत घोड़ेपर सवार होकर राणाके पास आये और बोले-'मेरे कुलमें पुराने समयसे हरावलका अधिकार आ रहा है। मैं इसे छोड़ नहीं सकता।'

सक्तावत सरदार भी वहाँ थे। उन्होंने क्रोधमें भरकर कहा-'हरावलका अधिकार राणाने हमें दिया है। हम इसे दूसरे किसीको लेने नहीं देंगे।'

राणाने देखा कि दोनों सरदार परस्पर युद्ध करनेको तलवारें खींच रहे हैं। इसलिये उन्होंने कहा-'हरावलका अधिकार तो वीरका अधिकार है। जो अधिक वीर होगा उसीको यह अधिकार मिलेगा।'

चन्दावत सरदार तलवार खींचकर गरज उठा-'चन्दावत

वीर नहीं हैं—यह जिसे भ्रम हो वह युद्ध करने आ जाय ।'

सकतावत सरदारोंने भी तलवारें निकाल लीं । लेकिन राणाने उन्हें रोककर कहा—'मुगल-सेना हमारे चारो ओर पडी है । हमें मुगलोंसे अपने देशका उद्धार करना है । ऐसी दशामें हमारा एक भी वीर सरदार व्यर्थ प्राण दे, यह मैं नहीं चाहता । मैने निर्णय किया है कि उटालाके किलेमें जो पहले घुस सकेगा, उसीको सेनाके आगे चलनेका पद (हरावल) दिया जायगा ।'

सबने राणाके निर्णयकी प्रशंसा की । उदयपुरसे अठारह मीलपर चित्तौड़के रास्तेपर उटालाका किला था । उसपर मुगल-सेनाका अधिकार था । किलेके नीचे एक तेज धारवाली नदी बहती थी । किला दुर्गम पहाड़ीपर था और अजेय समझा जाता था । सकतावत और चन्दावत सरदारोंने अपनी-अपनी सेना सजायी और अलग-अलग रास्तेसे उटाला किलेपर चढ़ाई करने चल पडे ।

सकतावत सरदार अपनी सेनाके साथ पहले पहुँचे । लेकिन शीघ्रतामें वे लोग सीढ़ियाँ और रस्सियाँ लाना भूल गये थे । अब लौटनेपर डर था कि चन्दावत आ जायँगे और किलेपर पहले अधिकार कर लेंगे । इसलिये उन लोगोंने फाटक तोड़नेका निश्चय किया । किलेके मुगल-सैनिक सकतावत वीरोंके हाथों गाजर-मूलीकी भाँति कटने लगे ।

इतनेमें चन्दावत सरदार भी सेनाके साथ आ पहुँचे। उन लोगोंने सीढ़ियाँ लगायीं और किलेपर चढ़ने लगे। अब सक्तावत सरदारोंसे रहा नहीं गया। किलेका फाटक तोड़नेके लिये हाथी बढ़ाया गया, परंतु फाटकमें नोकदार कीलें लगी थीं। हाथी उनपर टक्कर नहीं मार सकता था। सक्तावत सरदार बल्लसिंहने देखा चन्दावत अब दीवालपर चढ़ना ही चाहते हैं। वह घोड़ेसे कूदा और किलेके फाटकसे पीठ सटाकर खड़ा हो गया। बड़े कड़े स्वरमें उसने आज्ञा दी—'हाथी हूला।'

महावत काँप गया। हाथी टक्कर मारे तो सरदारकी

मृत्यु निश्चित है। लेकिन अचलसिंहने महावतको हिचकते देख कहा–'देखता नहीं, चन्दावत दुर्गपर चढ़े जा रहे हैं। तुझे सकतावतोंकी आन! हाथी हूल।'

दाँतपर दाँत दबाकर महावतने हाथीको अंकुश मारा। हाथीने पूरे जोरसे चिग्घाड मारकर अचलसिंहकी छातीपर अपने सिरसे टक्कर मार दी। अचलसिंहका देह फाटकके कीलोंसे छिदकर उसमें चिपक गया; किंतु किलेका फाटक चग्मराकर टूटा और गिर पडा।

उधर चन्दावत सरदारने किलेपर चढ़ते-चढ़ते देख लिया था कि किलेका द्वार टूट गया है और सकतावत अब विजयी होनेवाले है। चन्दावत सरदारने अपने साथीसे कहा–'मेरा सिर काट लो और झटपट किलेके भीतर फेंक दो।'

चन्दावत सरदारका कटा सिर किलेके भीतर सकतावतों-से पहले पहुँच गया। राणाकी सेनामें हरावलका अधिकार चन्दावतोंके पास वंशपरम्परासे था और सुरक्षित रह गया; किंतु यह निर्णय करना किसीके लिये सरल कहाँ है कि सकतावत और चन्दावत सरदारोंमेंसे अधिक वीर कौन था।

देश, जाति एवं कुलकी मर्यादाकी रक्षाके लिये हँसते-हँसते प्राण देनेवाले वे वीर धन्य हैं और धन्य है ऐसे वीरोंको उत्पन्न करनेवाली भारत-भूमि।

छत्रपति महाराज शिवाजीकी उदारता

एक बार रातमें छत्रपति शिवाजी महाराज सो रहे थे। एक तेरह चौदह वर्षका बालक किसी प्रकार उनके सोनेके कमरेमें छिपकर पहुँच गया। उसने शिवाजीको मार डालनेके लिये तलवार निकाली; किंतु जैसे ही तलवार चलानेके लिये उसने हाथ उठाया, तानाजीने पीछेसे उसका हाथ पकड़ लिया। छत्रपतिके विश्वासी सेनापति तानाजीने उस लड़केको पहले ही देख लिया था और वे यह देखने उसके पीछे छिपे-छिपे आये थे कि वह क्या करना चाहता है।

शिवाजीकी नींद टूट गयी। उन्होंने बालकसे पूछा—'तुम कौन हो? यहाँ क्यों आये?'

बालकने कहा—'मेरा नाम मालोजी है। मैं आपकी हत्या करने आया था।'

शिवाजी—'तुम मुझे क्यों मारना चाहते हो? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?'

बालक—'आपने मेरी कोई हानि नहीं की है। लेकिन मेरी माता कई दिनोंसे भूखी है। हम बहुत गरीब हैं। आपके शत्रु सुभागरायने मुझसे कहा था कि यदि मैं आपको मार डालूँ तो वे मुझे बहुत धन देंगे।'

इतनेमें तानाजी बोले—'दुष्ट लड़के! धनके लोभसे तू

महाराष्ट्रके उद्धारकका वध करना चाहता था ? अब मरनेको तैयार हो जा।'

बालक तनिक भी डरा नहीं। उसने तानाजीके बदले शिवाजीसे कहा—'महाराज! मैं मरनेसे डरता नहीं हूँ। मुझे अपने मरनेकी चिन्ता भी नहीं है। लेकिन मेरी माँ बीमार है और कई दिनोंसे भूखी है। वह मरनेको पडी है। आप मुझे एक बार घर जाने दीजिये। माताके चरणोंमें प्रणाम करके मैं फिर आपके पास लौट आऊँगा। मैंने आपको मारने-का यत्न किया। अब आप मुझे मार डालें, यह तो ठीक ही है; परंतु मुझे थोडा-सा समय दीजिये।'

शिवाजीने कहा—'तू हमें बातोंसे धोखा देकर भाग नहीं सकता।'

बालक बोला—'मैं भागूँगा नहीं। मैं मराठा हूँ, मराठा झूठ नहीं बोलता।'

शिवाजीने उसे घर जानेकी आज्ञा दे दी। बालक घर गया। दूसरे दिन सबेरे जब छत्रपति महाराज शिवाजी राजदरबारमें सिंहासनपर बैठे थे, द्वारपालने आकर सूचना दी कि एक बालक महाराजके दर्शन करना चाहता है। बालक बुलाया गया। यह वही मालोजी था।

मालोजीने दरबारमें आकर छत्रपतिको प्रणाम किया और बोला—'महाराज! मैं आपकी उदारताका आभारी हूँ। माताका दर्शन कर आया। अब आप मुझे मृत्यु-दण्ड दें।'

छत्रपति महाराज शिवाजी सिंहासनसे उठे। उन्होंने बालकको हृदयसे लगा लिया और कहा—'यदि तुम्हारे-जैसे वीर एवं सच्चे लोगोंको प्राण-दण्ड दे दिया जायगा तो देशमें रहेगा कौन। तुम्हारे-जैसे बालक ही तो महाराष्ट्रके भूषण हैं।'

बालक मालोजी शिवाजी महाराजकी सेनामें नियुक्त हो गया। छत्रपतिने उसकी माताकी चिकित्साके लिये राजवैद्यको भेजा और बहुत-सा धन उसे उपहारमें दिया।

देश-भक्ति

राजपूतानेमें बूँदी-राज्य पहले चित्तौड़के अधीन था; किंतु पीछे वह स्वाधीन हो गया। जब चित्तौड़के राणा दिल्लीके बादशाहके आक्रमणोंसे कुछ निश्चिन्त हुए तब उन्होंने बूँदीपर आक्रमण करके उसे फिरसे चित्तौड़के अधीन बनानेका निश्चय किया। एक सेना सजाकर वे चल पड़े और बूँदीके पास निमोरियामें पड़ाव डालकर रुके। बूँदीके राजा हाडाको इसका समाचार मिला। उन्होंने अपने चुने हुए पाँच सौ योधाओंको साथ लिया और रातके समय राणाकी सेनापर छापा मारा।

चित्तौड़के सैनिक बेखबर थे। अचानक आक्रमण होनेसे उनके सहस्रों वीर मारे गये। राणाको पराजित होकर चित्तौड़ लौटना पड़ा। इस पराजयसे राणा क्रोधमें भर गये। उन्होंने प्रतिज्ञा की—'जबतक बूँदीके किलेको गिरा नहीं दूँगा, अन्न-जल नहीं लूँगा।'

चित्तौड़से बूँदी बत्तीस कोस है। सेना एकत्र करने, बूँदी-तक जानेमें समय तो लगना ही था। यह भी पता नहीं था कि युद्ध कितने दिन चलेगा। राणाकी प्रतिज्ञा सुनकर चित्तौड़के सामन्त और मन्त्री बहुत दुखी हुए। उन्होंने

राणाको समझाया—'आपकी प्रतिज्ञा बहुत कड़ी है। बूँदी जीतना तो है ही; किंतु आप तबतक अन्न-जल न लेनेकी प्रतिज्ञा छोड़ दें।'

राणाने कहा—'प्रतिज्ञा तो प्रतिज्ञा है। मैं अपनी प्रतिज्ञा झूठी नहीं करूँगा।'

अन्तमें मन्त्रियोंने एक उपाय निकाला। उन्होंने चित्तौड़में बूँदीका एक नकली किला बनानेका विचार किया और राणासे कहा—'आप बूँदीके नकली किलेको गिराकर प्रतिज्ञा पूरी कर लीजिये और अन्न-जल ग्रहण कीजिये। दो-चार दिनोंमें सेना एकत्र करके बूँदीपर सुविधानुसार आक्रमण किया जायगा।'

राणाने मन्त्रियोंकी बात मान ली। बूँदीका नकली किला बनाया जाने लगा। बूँदीमें हाडा जातिके राजपूतोंका राज्य था। बूँदीके हाडा जातिके कुछ राजपूत चित्तौड़की सेनामें भी थे। उनकी सैनिक टुकड़ीके नायकका नाम कुम्भा बैरसी था। कुम्भा उस दिन बनसे आखेट करके लौट रहे थे तो उन्होंने बूँदीका नकली किला बनते देखा। पूछनेपर उन्हें राणाकी प्रतिज्ञा और मन्त्रियोंके सलाहकी सब बातोंका पता लग गया।

कुम्भा बड़ी शीघ्रतासे अपने डेरेपर आये। उन्होंने अपनी टुकड़ीके सब हाडा राजपूत-सैनिकोंको इकट्ठा किया।

सब बातें बताकर वे बोले—'जहाँ एक भी सच्चा देश-भक्त होता है, वहाँ वह अपने जीते-जी अपने देशके झंडे या अपने देशके किसी आदर्श चिह्नका अपमान नहीं होने देता। यह बूँदीका नकली किला झंडेके समान बूँदीका चिह्न बनाया जा रहा है और इसी भावसे उसे तोडनेकी बात सोची गयी है। यह हमारी जन्म-भूमिका अपमान है। अपने जीते-जी हम यह अपमान नहीं होने देंगे।'

ठीक समयपर राणाजी थोड़ी सेना लेकर नकली किला तोडने गये तो उन्होंने देखा कि कुम्भा वैरसी अपने सैनिकों-

के साथ उस किलेकी रक्षाके लिये हथियारोंसे सजा खड़ा है। कुम्भाने राणासे कहलाया—'हमलोग आपके सेवक हैं। हमने आपका नमक खाया है। आप बूँदीपर आक्रमण करें तो हम आपका विरोध नहीं करेंगे। दूसरे किसी आक्रमणमें हम आपकी रक्षाके लिये, आपकी आज्ञाका पालन करनेके लिये बड़ी प्रसन्नतासे प्राण दे सकते हैं; किंतु अपनी जन्मभूमिका हम इस प्रकार अपमान नहीं देख सकते। हमारे जीते-जी आप इस नकली किलेको तोड़ नहीं सकते।'

राणाको क्रोध आया। बड़ा भारी युद्ध छिड़ गया। जिस नकली किलेका तोड़ना राणा और उसके मन्त्रियोंने बहुत सरल समझा था, उसके लिये उन्हें बड़ा भयानक युद्ध करना पड़ा। कुम्भा और उनके साथियोंकी जब लाशें गिर गयीं, तभी राणा उस नकली किलेको तोड़ सके।

किलेको तोड़कर राणाने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली; किंतु कुम्भा-जैसे वीरके मरनेका उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने कुम्भाकी वीरताका सम्मान करनेके लिये बूँदीपर आक्रमण करनेका विचार छोड़ दिया और वहाँके राजाको बुलाकर उनसे मित्रता कर ली।

कुम्भा-जैसे देश-भक्त एवं वीर ही देशको स्वाधीन एवं गौरवशाली बनाते हैं।

माहाता शैसाकी ईमानदारी

माहाता शैसाका जन्म सीलोनमें हुआ था। सीलोनका पुराना नाम सिंहलद्वीप है। इसे लका भी कहा जाता है। माहाता शैसा एक आदर्श पुरुप हो गये हैं। वचपन उनका वडी दरिद्रतामें वीता था। उनके पिता दिवाकर शैसा वहुत कम पढ़े-लिखे थे। जंगली जड़ी-वूटियाँ वेचकर वे अपने परिवारका मरण-पोपण करते थे। अपने पुत्र माहाता शैसाको उन्होंने थोडी-वहुत शिक्षा दी और वैद्यक भी सिखाया।

जिस समय दिवाकर चैसाकी मृत्यु हुई, सीलोनमें अकाल पड़ा था। उस समय माहाता चैसा केवल १८ वर्षके थे। उनके ऊपर परिवारके भरण-पोषणका भार पड़ गया। एक तो वे लड़के थे, दूसरे उनके गाँवमें दूसरे भी कई अच्छे वैद्य थे। ये वैद्य माहातासे द्वेष रखते थे और रोगियोंको भड़काया करते थे कि—'माहाताको वैद्यकका कुछ भी ज्ञान नहीं है। वह तो रोगियोंकी बीमारी बढ़ा देता है।' इन सब कारणोंसे माहाताको वैद्यकसे जो चार आठ आने मिलते भी थे, वे भी बंद हो गये। उनको और उनके परिवारको कई बार केवल पानी पीकर रह जाना पड़ता था। उनकी माता दूसरोंका अन्न पीसती थी और उनकी बहिन फूलोंकी माला बनाती थी, जिसे वे बेच आते थे। इस प्रकार यह परिवार बड़े कष्टमें जीवन बिता रहा था।

अचानक एक दिन सिंहलद्वीपके एक प्रसिद्ध धनीका पत्र माहाताको मिला। उस धनीका नाम लारेंटो बेंजामिन था। माहाताके पिता लारेंटोके पारिवारिक चिकित्सक थे। लारेंटो बीमार था और उसने माहाताको अपनी चिकित्सा करनेके लिये बुलाया था। पत्र पाकर माहाता लारेंटोके गाँव गये और उसकी चिकित्सा करनेके लिये वहीं ठहर गये।

लारेंटोका एक बड़ा बगीचा था। किसी समय वह बगीचा बहुत सुन्दर रहा होगा, किंतु उन दिनों तो उसके बीचके मकान खँडहर हो गये थे। बगीचेमें घास और

जंगली झाड़ियाँ उग गयी थीं। उसमें कोई आता-जाता नहीं था। माहाता जड़ी-बूटियाँ ढूँढ़ने उस बगीचेमें प्रायः जाने लगे।

एक दिन माहाता जड़ी-बूटी ढूँढ़ते उस बगीचेमें घूम रहे थे। खंडहरमें घूमते समय उनका पैर एक स्थानपर भूमिमें धँस गया। वहाँ उन्होंने ध्यानसे देखा तो एक ताँबेका हंडा पृथ्वीमें गड़ा था। माहाताने उस स्थानके आस-पासकी मिट्टी हटायी। कई हंडे वहाँ भूमिमें गड़े दिखायी पड़े। बड़े कठिन परिश्रमसे वे एक हंडेके मुखके ऊपरका ढक्कन हटा सके। उनके आश्चर्यका पार नहीं रहा। हंडा सोनेकी अशर्फियोंसे ऊपरतक भरा था।

माहाता बड़े दरिद्र थे। उनके सारे परिवारको कंगाली-के कारण बार-बार उपवास करना पड़ता था। उनके सामने सोनेकी मोहरोंसे भरे कई हंडे थे और उस उजाड़ बगीचेमें कोई उन्हें देखनेवाला भी नहीं था। लेकिन माहाताके मनमें लोभ नहीं आया। वे बोले—'बेचारा लारेटो धनकी चिन्ताके कारण ही रोगी है। उसपर ऋण हो गया है। अब वह स्वस्थ हो जायगा। उसकी भूमिमें उसके पूर्वजोंका इतना धन गड़ा है, इसका उसे क्या पता था।'

माहाता उसी समय लारेटोके पास गये। लारेटो स्वयं वहाँ आया। हंडोंका धन घर पहुँच जानेपर उसने बड़ी नम्रता और आदरसे माहाताको दो सौ सोनेकी मोहरें और पाँच

सौ रुपये देना चाहा। माहालाने कहा—'मैं आपका धन नहीं लूँगा। मैंने आपके ऊपर कोई उपकार नहीं किया है। मैंने तो एक साधारण कर्तव्यका पालन किया है।'

लारेटोपर माहालाकी ईमानदारी और सद्व्यवहारका बड़ा प्रभाव पड़ा। आगे चलकर उसने अपनी इकलौती पुत्रीका विवाह माहालाके साथ कर दिया। एक धनीकी एकमात्र कन्यासे विवाह करके भी माहालाने श्वशुरके धनको लिया नहीं। उन्होंने परिश्रम करके ही अपना काम चलाया। अपने परिश्रम तथा उदारतासे वे सीलोनमें बहुत प्रसिद्ध और सम्पन्न हो गये थे।

दो आदर्श मित्र

सौ वर्षसे पहलेकी बात है। इंगलैंडके वेस्ट मिनिस्टर नामके प्रसिद्ध स्कूलमें दो मित्र पढते थे। एकका नाम था निकोलस और दूसरेका नाम था वेक। निकोलस आलसी, नटखट और झूठा था; परंतु वेक परिश्रमी, सीधा और सच्चा लडका था। इतना होनेपर भी वेक और निकोलसमें बहुत पक्की मित्रता थी।

एक दिन पाठशालाके अध्यापक किसी कामसे थोड़ी देरके लिये कक्षासे बाहर चले गये। लड़कोंने पढना बंद कर दिया और वे बातचीत करने लगे। नटखट निकोलसको

घूम करनेकी सूझी। उसने कक्षामें लगा दर्पण उठाकर पटक दिया। दर्पण चूर-चूर हो गया।

दर्पणके टूटते ही सब लड़के चौंक गये। निकोलसको भी लगा कि उससे बहुत बड़ी भूल हुई। मार पड़नेके भयसे वह अपने स्थानपर जाकर चुपचाप बैठ गया और सिर झुकाकर पढ़नेमें लग गया।

शिक्षकने कक्षामें आते ही दर्पणके टुकड़े देखे। वे बहुत कठोर स्वभावके थे। बड़े क्रोधसे डाँटकर उन्होंने कहा—'यह उत्पात किसने किया है? वह अपने स्थानपर खड़ा हो जाय!'

भयके मारे कोई लड़का बोला नहीं। लेकिन शिक्षक यों सहजमें छोड़ देनेवाले नहीं थे। उन्होंने एक-एक लड़केको खड़ा करके पूछना प्रारम्भ किया। जब निकोलसकी बारी आयी तो दूसरे लड़कोंके समान उसने भी कह दिया—'मैंने दर्पण नहीं तोड़ा है।'

बेकने जब देखा कि उसका मित्र निकोलस मार पड़नेके डरसे झूठ बोल गया है तो उसने सोचा कि 'शिक्षक अवश्य दर्पण तोड़नेवालेका पता लगा लेंगे। निकोलसका झूठ बोलनेके कारण और भी मार पड़ेगी। इसलिये मुझे अपने मित्रको बचा लेना चाहिये।' वह उठकर खड़ा हो गया और बोला—'दर्पण मेरे हाथसे टूट गया है।'

दूसरे सब लड़के और निकोलस भी आश्चर्यसे बेकका

मुख देखने लगे। शिक्षकने बेंत उठा लिया और बेकको सड़ासड पीटने लगे। बेचारे बेकके शरीरपर नीले-नीले दाग पड गये, किंतु न तो वह रोया और न चिल्लाया।

जब पाठशालाकी छुट्टी हुई, सब लड़कोंने बेकको घेर लिया। निकोलस रोता-रोता उसके पास आया और बोला—'बेक! मै तुम्हारे इस उपकारको कभी नहीं भूलूँगा। तुमने मुझे आज मनुष्य बना दिया। मैं अब कभी झूठ नहीं बोलूँगा, ऊधम नहीं करूँगा। अब मै पढ़नेमें ही परिश्रम करूँगा।'

निकोलस सचमुच उसी दिनसे सुधर गया। वह पढ़नेमें परिश्रम करने लगा। बडा होनेपर उसने इतनी उन्नति

की कि वह न्यायाधीशक पदपर पहुँच गया। चालीस वर्ष बाद इंगलैंडमें राजतन्त्र और प्रजातन्त्रके समर्थकोंमें युद्ध हुआ। राजतन्त्रक समर्थक लोग हार गये। प्रजातन्त्रकी ओरसे उस समय क्रामवेल शासक थे। उनकी आज्ञा थी कि राजतन्त्रके समर्थकोंको प्राण-दण्ड दिया जाय। वेकने राजतन्त्रका समर्थन किया था। युद्धमें वह बंदी हुआ। एक्जेक्स्टरमें न्यायाधीश निकोलसके सामने उसे लाया गया। निकोलस न्यायाधीश था, उसे वेकको प्राण-दण्डकी आज्ञा सुनानी पड़ी।

वेकको प्राणदण्डकी आज्ञा सुनाकर निकोलसका हृदय व्याकुल हो गया। वह तुरंत अपने आसनसे उठकर भागा और घोड़ेपर जा चढ़ा। उसे लंदन जाना था। लंदन वहाँसे बहुत दूर था। रास्तेमें उसे तीन चार घोड़े बदलने पड़े। दो रात और एक दिन वह बराबर घोड़ेकी पीठपर बैठा रहा। लंदनमें वह सीधे क्रामवेलके महलमें गया। अपने मित्र वेकके उपकारकी कथा सुनाकर क्रामवेलसे उसने मित्रके लिये क्षमा-दान माँगा। क्रामवेलसे क्षमा-दानका पत्र लेकर फिर वह पहिलेकी भाँति घोड़ेपर दौड़ा और उसे तब शान्ति मिली, जब बंदीघरमें वेकके हाथमें क्षमा-दानका वह पत्र उसने दे दिया। दोनों मित्र चालीस वर्ष बाद फिर गले मिले।

वचनका पालन

स्पेन देशके एक छोटेसे गाँवमें एक माली अपने बगीचेको सींचने और पेड-पौधोंको ठीक करनेमें लगा था। उसी समय एक मनुष्य दौडता हुआ बगीचेमें आया। वह मनुष्य लंबा था, उसका सिर नंगा था और बाल बिखरे हुए थे। उसने एक कोट पहन रखा था। बगीचेके स्वामीके सामने आकर हाथ जोडकर गिड़गिड़ाता हुआ वह बोला—'आप मेरी रक्षा कीजिये। दिन भरके लिये मुझे कहीं छिपा दीजिये। लोग मेरे पीछे पड़े है। वे मुझे मार डालना चाहते है।'

वह आदमी थर-थर काँप रहा था और भयके मारे बार-बार पीछेकी ओर मुडकर बगीचेके फाटककी तरफ देख रहा था। बगीचेके स्वामीको उसपर दया आ गयी। उन्होंने उसे एक कोठरी दिखाकर कहा—'उसमें रद्दी फावडे, टोकरियाँ तथा दूसरा सामान पडा है। तुम उसीमें छिपकर बैठ जाओ। मैं किसीको तुम्हारा पता नहीं बताऊँगा। रातको अँधेरा होनेपर तुम्हें यहाँसे निकाल दूँगा।'

थोडी देरमें कुछ लोग एक युवककी मृत देह उठाये वहाँ आये। बगीचेके स्वामीने उस युवकको देखा और 'बेटा! बेटा!' कहकर रोता हुआ उससे चिपट गया। वह युवक उसका पुत्र था। आज सबेरे वह अकेले ही घरसे घूमने निकला था।

जो लोग युवककी मृत देह ले आये थे, उन्होंने बताया—'गाँवके बाहर केवेलियर जातिके एक मनुष्यने इसे

गला घोंटकर मार डाला है। वह दुष्ट इसे पटककर इसकी छातीपर बैठा इसका गला दबा रहा था। हमलोग दौड़े किंतु वह भागकर अपने गाँवमें ही कहीं छिप गया। हमें बहुत दुःख है कि हमारे पहुँचनेमें देर हो गयी। आपके पुत्रके प्राण हम नहीं बचा सके।'

फवेलियर जाति और स्पेनके दूसरे लोगोंमें शत्रुता थी। फवेलियर जातिके लोग दूसरोंको इसी प्रकार छिपकर मार दिया करते थे। बगीचेके स्वामीका उन लोगोंने, जो उसके पुत्रकी देह ले आये थे, हत्यारेका रूप-रंग और उसके कोटका रंग बताया। बगीचेका स्वामी सिर पकड़कर बैठ गया। वह समझ गया कि जिस मनुष्यको उसने कोठरीमें छिपा रखा है, वही उसके पुत्रका हत्यारा है और हत्या करके पकड़े जानेके भयसे यहाँ छिपा है। लेकिन उस हत्यारेके सम्बन्धमें एक शब्द भी बगीचेके स्वामीने नहीं कहा।

दिन तो अपने पुत्रकी देहको कब्रमें पहुँचाने, रोने और घरपर सान्त्वना देने आनेवालोंकी बातें सुननेमें बीत गया। रात हुई, अन्धकार फैला। जब सब लोग सो गये तो बगीचे-का स्वामी अपने घरसे बगीचे आया। उसने वह कोठरी खोली और उसमें छिपे मनुष्यसे कहा—'तुम्हें पता है कि दिनमें तुमने जिस युवककी हत्या की है, वह मेरा पुत्र था?'

हत्यारा काँपने लगा। भयके मारे उससे बोला नहीं गया। उसने समझ लिया कि अब उसके प्राण नहीं बच सकते। लेकिन बगीचेके स्वामीने उसे निर्भय करते हुए

कहा—'डरो मत ! मैंने तुम्हें शरण दी है और तुम्हारी रक्षाका वचन दिया है। मैं अपने वचनका पालन करूँगा। मेरे खच्चरोंमेंसे एक खच्चर ले लो और उसपर चढ़कर रात-ही-रात यहाँसे भाग जाओ।'

हत्यारा उस बगीचेके स्वामीके पैरोंपर गिर पड़ा और फूट-फूटकर रोने लगा। बगीचेके स्वामीने उसे उठाया और कहा—'मेरा मरा पुत्र अब लौट नहीं सकता। तुम व्यर्थ देर मत करो।'

अपने वचनके पालनके लिये अपने पुत्रके हत्यारेको भी क्षमा करनेवाले ऐसे पुरुष ही संसारमें महापुरुष कहे जाते हैं।

फिलिप सिडनीकी उदारता

जुटेफन नामक स्थानमें अंग्रेजी-सेना शत्रुओंसे टक्कर ले रही थी। शत्रुओंकी सख्या अधिक थी। लेकिन अंग्रेज-सेना-नायक फिलिप सिडनीकी वीरता एवं उत्साहके कारण शत्रुओंकी एक भी चाल चल नहीं सकी। उन्हें हारकर पीछे लौटना पड़ा।

अंग्रेजी-सेनाकी जीत तो हुई; किंतु उसके बहुत-से सैनिक घायल होकर और कुछ मरे हुए पड़े थे। जो लोग बच गये थे, वे भी थक गये थे और घायल भी हो चुके थे। सेनानायक फिलिप सिडनीकी जाँघमें गोली लगी थी। उनकी जाँघकी हड्डी टूट गयी थी। वे दूसरे सैनिकोंके बीचमें घायल होकर भूमिपर पड़े थे।

जब किसीके शरीरसे बहुत-सा रक्त निकल जाता है, तब उसे बहुत प्यास लगती है। सिडनी साहबके शरीरसे बहुत रक्त निकल गया था। प्याससे उनका गला सूख रहा था। उन्होंने अपनी पानीकी बोतल निकाली। उसमें बहुत थोड़ा पानी था। लेकिन जैसे ही वे पानी पीने चले, उनकी दृष्टि अपने पास पड़े एक सैनिकपर पड़ी। सैनिक उस पानीकी बोतलको ही एकटक देख रहा था।

घायलोंको उठानेवाले स्वयंसेवक कबतक आयेंगे, यह पता नहीं था। उनके आनेमें देर भी हो सकती थी। सिडनी साहबका कंठ प्याससे सूख रहा था। ऐसा लगता था कि पानी न मिला तो प्राण निकल ही जायेंगे। लेकिन

उस सैनिकको पानीकी बोतलकी ओर एकटक देखते देखकर उन्होंने समझ लिया कि वह सैनिक भी बहुत प्यासा है। भय और संकोचके कारण अपने सेना-नायकसे वह पानीकी याचना करनेका साहस नहीं कर पाता।

उस सैनिकको भी गोली लगी थी। उसके शरीरसे भी बहुत रक्त निकल गया था। वह सचमुच बहुत प्यासा था।

फिलिप सिडनी बड़े कष्टसे खिसककर उसके पास पहुँचे और यह कहते हुए उन्होंने बोतलका पूरा पानी उसके मुखमें डाल दिया कि–'मेरी अपेक्षा तुम्हें इस पानीकी अधिक आवश्यकता है।'

एक साधारण सैनिकके लिये ऐसी उदारता एवं त्याग दिखानेवाले सेना-नायक धन्य हैं।

राजा मणीन्द्रचन्द्रकी उदारता

बंगालमें गुष्करा एक छोटा-सा स्टेशन है। एक दिन रेलगाड़ी आकर स्टेशनपर खड़ी हुई। उतरनेवाले झट-पट उतरने लगे और चढ़नेवाले दौड़-दौड़कर गाड़ीमें चढ़ने लगे। एक बुढ़िया भी गाड़ीसे उतरी। उसने अपनी गठरी खिसका-कर डिब्बेके दरवाजेपर तो कर ली थी; किंतु बहुत चेष्टा करके भी उतार नहीं पाती थी। कई लोग गठरीको लाँघते हुए डिब्बेमें चढ़े और डिब्बेसे उतरे। बुढ़ियाने कई लोगोंसे बड़ी दीनतासे प्रार्थना की कि उसकी गठरी उसके सिरपर उठाकर रख दें; किंतु किसीने उसकी बातपर ध्यान नहीं दिया। लोग ऐसे चले जाते थे, मानो बहिरे हों। गाड़ी छूटनेका समय हो गया। बेचारी बुढ़िया इधर-उधर बड़ी व्याकुलतासे देखने लगी। उसकी आँखोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे।

एकाएक प्रथम श्रेणीके डिब्बेमें बैठे एक सज्जनकी दृष्टि बुढ़ियापर पड़ी। गाड़ी छूटनेकी घंटी बज चुकी थी; किंतु उन्होंने इसकी परवा नहीं की। अपने डिब्बेसे वे शीघ्रतासे उतरे और बुढ़ियाकी गठरी उठाकर उन्होंने उसके सिरपर रख दी। वहाँसे बड़ी शीघ्रतासे अपने डिब्बेमें जाकर जैसे ही वे बैठे, गाड़ी चल पड़ी। बुढ़िया सिरपर गठरी

लिये उन्हें आशीर्वाद दे रही थी—'बेटा! भगवान तेरा भला करें!'

तुम जानते हो कि बुढ़ियाकी गठरी उठा देनेवाले सज्जन कौन थे? वे थे काशिम बाजारके राजा मणीन्द्रचन्द्र नन्दी, जो उस गाडीसे कलकत्ते जा रहे थे। सचमुच वे राजा थे; क्योंकि सच्चा राजा वह नहीं है जो धनी है या बडी सेना रखता है। सच्चा राजा वह है, जिसका हृदय उदार है, जो दीन-दुखियों और दुर्बलोंकी सहायता कर सकता है। ऐसे सच्चे राजा बननेका तुममेंसे सबको अधिकार है। तुम्हें इसके लिये प्रयत्न करना ही चाहिये।

अपना काम आप करनेमें लाज कैसी ?

एक बार एक ट्रेन बंगालमें एक छोटेसे स्टेशनपर रुकी। गाड़ीके रुकते ही एक सजे धजे युवकने 'कुली ! कुली !' पुकारना प्रारम्भ किया। युवकने बढ़िया पतलून पहन रखा था, पतलूनके रंगका ही उसका कोट था, सिरपर हैट था, गलेमें टाई बँधी थी और उसका बूट चमचम चमक रहा था।

देहातके स्टेशनपर कुली तो होते नहीं। बेचारा युवक बार-बार पुकारता था और इधर-उधर हैरान होकर देखता था। उसी समय वहाँ सादे स्वच्छ कपड़े पहिने एक सज्जन आये। उन्होंने युवकका सामान उतार लिया। युवकने उनको कुली समझा। वह डाँटते हुए बोला—'तुमलोग बड़े सुस्त होते हो। मैं कबसे पुकार रहा हूँ।'

उन सज्जनने कोई उत्तर नहीं दिया। युवकके पास हाथमें ले चलनेका एक छोटा बक्स (हैंड बेग) था और एक छोटा-सा बंडल था। उसे लेकर युवकके पीछे-पीछे वे उसके घरतक गये। पर पहुँचकर युवकने उन्हें देनेके लिये पैसे निकाले। लेकिन पैसा लेनेके बदले वे सज्जन पीछे लौटते हुए बोले—'धन्यवाद !'

युवकको बड़ा आश्चर्य हुआ। यह कैसा कुली है कि बोझा ढोकर भी पैसा नहीं लेता और उलटे धन्यवाद देता है। उसी समय वहाँ उस युवकका बड़ा भाई आ गया। उसने जो उन सज्जनकी ओर देखा तो ठकसे रह गया। उसके मुखसे केवल इतना निकला—'आप !'

जब उस युवकको पता लगा कि जिसे उसने कुली समझकर डाँटा था और जो उसका सामान उठा लाये थे वे दूसरे कोई नहीं, वे तो बंगालके प्रसिद्ध महापुरुष पं० ईश्वर-चन्द्र विद्यासागरजी हैं, तो वह उनके चरणोंपर गिर पड़ा और क्षमा माँगने लगा।

ईश्वरचन्द्रजीने उसे उठाया और कहा—'इसमें क्षमा माँगनेकी कोई बात नहीं है। हम सब भारतवासी हैं। हमारा देश अभी गरीब है। हमें अपने हाथसे अपना काम करनेमें लज्जा क्यों करनी चाहिये। अपने हाथसे अपना काम कर लेना तो सम्पन्न देशोंमें भी गौरवकी बात मानी जाती है।'

सर गुरुदासकी मातृ भक्ति

उस समय भारतमें अंग्रेजी राज्य था। बहुत थोड़े-से भारत वासी ऊँचे सरकारी पदोंपर नियुक्त हो सके थे। सर गुरुदास बन्द्योपाध्याय उस समय कलकत्ता हाईकोर्टके न्यायाधीश (बड़े जज) थे और साथ ही कलकत्ता-विश्वविद्यालयके वाइस चान्सलर (मुख्य कुलपति) भी थे।

एक बार सर गुरुदास हाईकोर्टमें बैठे कोई मुकदमा सुन रहे थे। उसी समय एक बुढ़िया वहाँ आयी। उस बुढ़ियाने बचपनमें सर गुरुदासको दूध पिलाया था। वह उनकी धाय थी। अब अपने देहातमें चली गयी थी। बहुत दिनोंसे वह कलकत्ते नहीं आयी थी। इस बार ग्रहण पड़नेसे वह गङ्गास्नान करने कलकत्ते आयी थी। गङ्गास्नान करके उसके मनमें

आया कि 'अपने गुरुदाससे मिलती जाऊँ ।' लोगोंसे पूछती-पूछती वह हाईकोर्ट चली आयी थी ।

देहातकी एक गरीब बुढ़िया मैले कपडे पहने आयी थी । गङ्गास्नान करनेसे उसके कपड़े भींगे थे । उसने सूखे कपडे भी नहीं पहिने थे । हाईकोर्टका चपरासी उसे कमरेके भीतर नहीं जाने देता था और वह उससे हाथ जोडकर कह रही थी—'भैया ! मुझे अपने गुरुदाससे मिल लेने दे ।'

अचानक सर गुरुदासकी दृष्टि दरवाजेकी ओर चली गयी । वे न्यायाधीशके आसनसे झटपट खडे हो गये । उनको आते देखकर चपरासी एक ओर हट गया । सर गुरुदासने भूमिमें लेटकर उस मैली-कुचैली गरीब बुढ़ियाको दण्डवत् प्रणाम किया । सब लोग हक्के-बक्के से देखते रह गये । देहाती बुढ़िया क्या जाने कि हाईकोर्ट क्या होता है और जज क्या होता है । उसकी तो दोनों आँखोंसे आँसूकी धारा चलने लगी । उसने कहा—'मेरा गुरुदास ! जीता रह बेटा !'

सर गुरुदासने सबको बताया—'ये मेरी माता हैं । इन्होंने मुझे दूध पिलाया है । अब आज मुकदमा बंद रहेगा । मैं इन्हें लेकर घर जा रहा हूँ ।' उस बुढ़ियाको जस्टिस सर गुरुदास आदरपूर्वक अपने घर ले गये । वहाँ उन्होंने उसका खूब आदर-सत्कार किया ।

दूध पिलानेवाली गाय भी माता ही है। जो इतने बड़े सम्राट होकर गायका भी इतना आदर करते थे, वे अपनी माता स्वर्णमणिदेवीका कितना आदर करते होंगे। जो लोग पढ़ लिखकर और ऊँचे पद पाकर अपने माता-पिता तथा घर-गाँवके बड़े लोगोंका आदर नहीं करते, वे तो ओछे स्वभावके कहे जाते हैं। अच्छे पुरुष वही हैं जो पद, विद्या और बड़ाई पाकर भी अभिमान नहीं करते। वे सदा नम्र बने रहते हैं और अपनेसे बड़ोंका पूरा आदर करते हैं।

ईमानदार व्यापारी

कलकत्तेमें किरानेका थोक व्यापार करनेवाला एक व्यापारी रहता था। उसका नाम रामदुलार था। रामदुलारके पिता पहले गरीब थे। बचपनमें ही रामदुलारके पिता परलोक चले गये थे। बड़े कष्ट और परिश्रमका जीवन बिताकर रामदुलारने धन कमाया और व्यापार जमाया था। लेकिन व्यापारमें वह बहुत ईमानदार और दयालु था।

एक बार काली मिर्चका भाव बहुत घट गया। रामदुलारके

पास बहुत-से बोरे काली मिर्चे थीं; किंतु उन्होंने घटे भावमें उन्हें बेचा नहीं। उन्हीं दिनों एक यूरोपियन उनके पास आया। उसने रामदुलारसे कहा—'मेरे पास बहुत काली मिर्च है। क्या तुम मेरे कुछ बोरे अपने पास रखकर मुझे थोड़े रुपये दोगे? मुझे इस समय रुपयोंकी बहुत आवश्यकता है।'

रामदुलारने कहा—'मैं बोरे रखकर उधार रुपये देनेका काम नहीं करता—आप चाहें तो मैं आपके बोरे खरीदकर उनके दाम दे सकता हूँ।'

यूरोपियनने समझा कि काली मिर्चका भाव बढ़नेकी सम्भावना है, इसीसे यह बड़ा व्यापारी आजके घटे भावमें मेरी मिर्चे खरीदना चाहता है। लेकिन उसे रुपयोंकी आवश्यकता थी। वह बोला—'जब तुम मेरे बोरे रखकर उधार रुपये नहीं देते, तो इन्हें खरीद ही लो। मेरा काम रुपयोंके बिना नहीं चल सकता।'

रामदुलारने उसके मिर्चके बोरे खरीद लिये और दाम दे दिये। दो-तीन दिन बाद काली मिर्चका भाव चढ़ गया। रामदुलारने बढ़े भावमें अपनी काली मिर्चके बोरे और उस यूरोपियन व्यापारीसे खरीदी काली मिर्चे भी बेच दीं। उन्हें खूब लाभ हुआ।

उस यूरोपियनको फिर रुपयोंकी आवश्यकता हुई। वह अपने पास बचे काली मिर्चके बोरे लेकर फिर रामदुलारके

पास आया। रामदुलारने उसे देखते ही कहा—'साहब! मैं आपका रास्ता ही देख रहा था, आप क्या फिर मिर्च बेचेंगे?'

यूरोपियन बोला—'हाँ, मुझे रुपयोंकी फिर आवश्यकता है। तुम कृपा करके मेरे ये बोरे भी खरीद लो।'

रामदुलारने बोरोंकी काली मिर्च तौला ली और हिसाब करके रुपये दे दिये। यूरोपियनको पता नहीं था कि काली मिर्चका भाव बढ़ गया है। उसने रुपये गिने और आश्चर्यसे कहा—'तुम अपना हिसाब फिर देखो। तुमने मुझे बहुत अधिक रुपये दिये हैं।'

रामदुलारने कहा—'हिसाबमें भूल नहीं है। आपको पता नहीं है कि काली मिर्चका भाव बढ़ गया है; किंतु आपके अनजानपनेसे लाभ उठाना तो बेईमानी है। मैं आपको धोखा देना नहीं चाहता।'

यूरोपियनने काली मिर्चका उस समयका भाव पूछा और कागज-पेन्सिल लेकर हिसाब करने लगा। उसने रुपये गिने और कहा—'तुमने अपने हिसाबमें अवश्य भूल की है। रुपये बहुत अधिक हैं।'

रामदुलारने फिर कहा—'रुपये अधिक नहीं हैं। हिसाबमें भूल भी नहीं है। पहली बार आप जब मुझे काली मिर्च दे गये थे तब भाव कम था। पीछे भाव बढ़ गया और मैंने बढ़े भावमें वह मिर्च बेच दी। उस दिन आप मिर्च बेचने नहीं आये थे। रुपयोंकी आवश्यकतासे विवश होकर आपको मिर्च बेचनी पड़ी थी। आपकी विवशतासे यदि मैं लाभ उठाऊँ तो यह भी बेईमानी और निर्दयता होगी। उस मिर्चमें भाव बढ़नेपर जो रुपये अधिक आये वे आपके ही हैं। मैं उन्हें ही आपको दे रहा हूँ। वे रुपये लौटानेके लिये कई दिनसे मैं आपका पता लगा रहा था।'

यूरोपियन रामदुलारकी ईमानदारी देखकर आश्चर्यमें पड़कर बोला—'भारतीय व्यापारी ऐसा ईमानदार होता है!'

अद्भुत क्षमा

एक युवक था, उसका नाम था किशोर। वह अपने घरसे व्यापारके लिये निकला था। रास्तेमें एक व्यापारीसे उसकी भेंट हो गयी। दोनों उस दिन साथ-साथ चले और संध्याको एक ही धर्मशालामें पास-पास सो गये। दूसरे दिन किशोर जल्दी उठा। व्यापारीको उसके साथ नहीं जाना था। वहाँसे दोनोंको अलग-अलग मार्ग पकड़ना था। इसलिये किशोर चल पड़ा। धूप निकलनेसे पहले वह कुछ रास्ता पार कर लेना चाहता था।

किशोर थोड़ी दूर गया था कि पीछेसे दौड़ते पुलिसके सिपाही आये। रातमें किसीने धर्मशालामें उस व्यापारीकी हत्या कर दी थी। पुलिसने किशोरकी तलाशी ली तो उसकी गठरीमेंसे रक्तमें डूबी एक कटार निकली। किशोरको बड़ा आश्चर्य हुआ। पुलिसने उसे बंदी कर लिया। उसने अपनेको सर्वथा निर्दोष बताया; किंतु उसकी बातपर अब कौन विश्वास करता। उसके पास अपने आठ हजार रुपये थे। सबने समझा कि उसने व्यापारीको मारकर ये रुपये छीने

है। अदालतने उसे आजीवन कारावासका दण्ड दिया।

किशोर जेल चला गया। वह बहुत सीधा और परिश्रमी था। जेलके अधिकारी और दूसरे बंदी उससे प्रसन्न रहते थे। बरस-पर-बरस बीतने लगे। वह बूढ़ा हो गया। उसके बाल पक गये। शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयीं।

एक दिन कुछ नये बंदी जेलमें आये। जब नये बंदी जेलमें आते हैं तो पुराने बंदी उनसे उनका परिचय और जेलमें आनेका कारण पूछते ही हैं। पूछनेपर पता लगा कि हरदयाल नामका एक बंदी उन नये बंदियोंमें उसी गाँवका है, जिस गाँवका किशोर था। किशोरने उससे अपने घरके लोगोंका हाल-चाल पूछा। हरदयालने भी किशोरका परिचय पूछा; क्योंकि वृद्ध होनेके कारण अब किशोर पहचाना नहीं जाता था।

किशोरका पहचानकर हरदयाल आश्चर्यमें पड़ गया। किशोरने उससे पूछा—'भाई! तुम तो बाहरसे आये हो। कुछ पता लगा कि उस व्यापारीका हत्यारा कौन था?'

अब तो हरदयाल चौंका। वह बोला—'रक्तसे सनी कटार जिसकी गठरीसे मिले, उसे छोड़कर दूसरा कौन हत्यारा हो सकता है।'

किशोर चुप हो गया। लेकिन 'चोरकी दाढ़ीमें तिनका' की कहावत है। हरदयालको लगा कि किशोर जान गया

है कि व्यापारीका हत्यारा हरदयाल है। कहीं किशोर यह बात जेलके अधिकारियोंको बता न दे, इस भयसे हरदयालने उसकी हत्या कर डालनेका निश्चय किया।

अब हरदयाल धीरे-धीरे किशोरके कमरेकी दीवालमें सेंध बनाने लगा। एक दिन रातमें दीवाल फोडकर वह किशोरके कमरेमें पहुँच गया और उसकी छातीपर चढ़ बैठा। लेकिन उसी समय रातको पहरा देनेवाले सिपाहीके आनेकी आहट मिली। हरदयाल सेंधके रास्ते झटपट भाग गया।

दूसरे दिन जेलमें हलचल मची। किशोरके कमरेमें बाहरसे किसीने सेंध लगायी थी। पहरेका सिपाही कहता था कि किशोरकी छातीपर चढ़े एक आदमीको उसने देखा था जो झटपट भाग गया। जेलरने किशोरसे पूछा तो वह बोला—'मैं उसे जानता तो हूँ; किंतु उसका नाम नहीं बताऊँगा। उसने मेरा अपराध किया और मैंने उसे क्षमा कर दिया।'

जब किशोर जेलरके पाससे लौटा, हरदयाल आकर उसके पैरोंपर गिर पड़ा। उसने रोते हुए कहा—किशोर! तुम देवता हो। तुम मुझे क्षमा कर दो। व्यापारीकी हत्या मैंने ही की थी। मैं उसी दिन तुम्हारी भी हत्या करना चाहता था, परंतु मुझे लगा कि धर्मशालामें कोई जाग उठा

है। मैंने कटार तुम्हारी गठरीमें छिपा दी और भाग गया। कल रात भी मैं तुम्हारी हत्या करने गया था। अब मैं अपना अपराध स्वीकार कर लूँगा। तुम जेलसे छूट जाओगे।'

किशोर बोला—'भाई! मैंने तुम्हें क्षमा कर दिया है। भगवान् तुम्हें क्षमा करें। मेरी जेठ तो वैसे ही पूरी हो गयी। मैं भगवान्‌के पास जाता हूँ।'

अपने इतने बड़े अपराधीको सरलतासे क्षमा कर देनेवाला किशोर हँसते-हँसते शरीर छोड़कर भगवान्‌के लोकको चला गया।

जापानी सैनिकोंकी देशभक्ति

जापानके लोग अपनी देश-भक्ति और राज-भक्तिके लिये प्रसिद्ध हैं। अपने देशके लिये हँसते-हँसते प्राण दे देना जापानके लोग बड़े गौरवकी बात मानते हैं। एक बार रूस और जापानमें युद्ध हुआ था। रूस-जैसे बड़े देशको जापानने उस बार हरा दिया था। उस युद्धमें जापानी सैनिकोंने वीरताके बड़े-बड़े काम किये थे। उनमेंसे दो उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

(१)

एक किलेपर रूसी-सेनाका अधिकार था। किलेके चारों ओर गहरी खाईं थी और उसमें पानी भरा हुआ था। खाईंके ऊपरका पुल रूसी लोगोंने तोड़ दिया था। किलेमें रूसके थोड़े-से सैनिक थे; किंतु खाईंको पार किये बिना किलेपर अधिकार नहीं हो सकता था। युद्धमें उस किलेका बहुत महत्त्व था। जापानी सेनापतिके पास खाईंपर पुल बनानेका सामान नहीं था। डर यह था कि दूसरे दिन और रूसी सेना वहाँ आ जायगी।

सेनापतिने कुछ सोचकर सैनिकोंसे कहा—'इस खाईंको मनुष्योंके शरीरसे भर देनेको छोड़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। जापानके लिये जो प्रसन्नतासे अपना बलिदान करना चाहें वे दो पद आगे बढ़ें।'

पूरी-की-पूरी सेना दो पद आगे बढ़ आयी। एक भी सैनिक ऐसा नहीं था, जो प्राण देनेमें पीछे रहना चाहता हो। सेनापतिने सबको नम्बर बोलनेको कहा। उसके बाद उसने आज्ञा दी कि प्रति पाँचवाँ सैनिक कपड़े उतार दे और हथियार रखकर

खाईमें कूद पड़े। एकके ऊपर एक जापानी सैनिक उस खाईमें धड़ाधड़ कूदने लगे। खाई उनके शरीरसे भर गयी।

अपने देश भक्त वीर सैनिकोंकी लाशोंके पुलपरसे जापानी सेना और उनकी भारी तोपोंने पुल पार करके उस किलेपर अधिकार कर लिया।

(२)

रूस-जापानके उसी युद्धकी बात है। रूसकी सेनाने एक पहाड़ीपर आक्रमण किया। उस पहाड़ीपर जापानके थोड़े-से सैनिक और एक भारी तोप थी। रूसी सैनिक उस तोपपर अधिकार करना चाहते थे, क्योंकि उनके पास वहाँ

ितनी बड़ी तोप नहीं थी । रूसके सैनिकोंका आक्रमण बहुत
यानक था । वे संख्यामें बहुत अधिक थे । जापानी सेनाको
ीछे हटना पड़ा । वे अपनी भारी तोप हटा नहीं सके । उस
ोप तथा पहाडीपर रूसी सेनाने अधिकार कर लिया ।

उस तोपको चलानेवाला जो जापानी तोपची था, उसे
यह बात सहन नही हुई कि उसकी तोपसे शत्रु उसीके पक्षके
सैनिकोंके प्राण ले । रातमें बिना किसीको बताये वह पेटके
बल सरकता, छिपता उस पहाड़ीपर चढ गया । वह उस
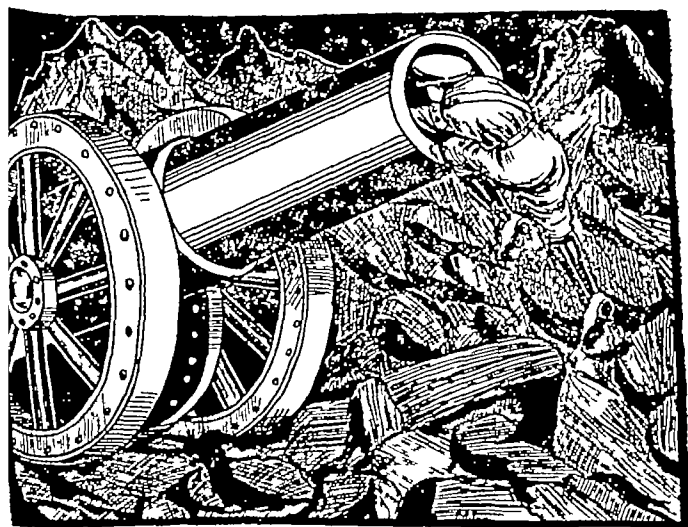
तोपके पास तो पहुँच गया, किंतु तोपको हटाने या नष्ट

करनेका उसके पास कोई उपाय नहीं था। अन्तमें वह उस तोपकी नलीमें घुस गया।

रातमें वहाँ बरफ पड़ी। तोपकी नलीमें घुसे तापचीको ऐसा लगता था कि सर्दीके मारे उसकी नसोंके भीतर रक्त जमता जा रहा है। उसकी एक-एक नस फटी जा रही थी। सारे शरीरमें भयंकर पीड़ा हो रही थी। फिर भी वह दाँत-पर-दाँत दबाये वहाँ चुपचाप पड़ा रहा।

सबेरा हुआ। रूसी सैनिक तोपके पास आये। उन्होंने तोपकी परीक्षा लेनेका निश्चय किया। तोपमें गोला-बारूद भरा गया। जैसे ही तोप छूटी उसकी नलीमें घुसे जापानी सैनिकके चिथड़े उड़ गये और तोपके सामनेका वृक्ष रक्तसे लाल हो गया। तोपकी नलीसे रक्त निकल रहा था। रूसी सैनिकोंने वह रक्त देखा तो कहने लगे–'ऐसा लगता है कि तोप छोड़कर जाते समय जापानी लोग इसमें कोई प्रेत बैठा गये हैं। वह अब रक्त उगल रहा है। आगे पता नहीं क्या करेगा, यहाँसे भाग चलना चाहिये।'

प्रेतके भयसे रूसी सैनिक वह तोप वहीं छोड़कर उस पहाड़ीसे भाग गये। एक जापानी तोपचीने अपना बलिदान करके वह काम कर दिखाया जो एक सेना नहीं कर सकी थी।

श्रीहरिः

बाल-साहित्यकी कुछ पुस्तकें

बालकोंके जीवनमें शिक्षा—[भाग १ हाथमें ६] पृष्ठ-संख्या ११६, ।)
पिताकी सीख—पृष्ठ-संख्या १५२ सुन्दर मुखपृष्ठ मूल्य ।=)
पढ़ो समझो और करो—[नयी पुस्तक] पृष्ठ-संख्या १४८ मूल्य ।=)
बोधी कहानियाँ—पृष्ठ-संख्या ५१, तिरंगा मुखपृष्ठ, मूल्य ।-)
उपयोगी कहानियाँ—पृष्ठ-संख्या १ ४ रंगीन मुखपृष्ठ मूल्य ।-)
हिन्दी बालपोथी शिशुपाठ—[भाग १] पृष्ठ-संख्या ४ मूल्य =)
" —[भाग २] पृष्ठ-संख्या ४ मूल्य =)
" पहली पोथी (कक्षा १ के लिये) पृष्ठ ५४ मूल्य ।-)
" दूसरी पोथी (कक्षा २ के लिये) पृष्ठ ८८ मूल्य ।=)
भक्तराज ध्रुव—पृष्ठ-संख्या ४८ दो रंगीन चित्र मूल्य =)
प्रार्थना—सचित्र पृष्ठ-संख्या ५६ मूल्य =)
आदर्श भ्रातृ-प्रेम—सचित्र पृष्ठ-संख्या १ ४ मूल्य =)
बाल-शिक्षा—सचित्र पृष्ठ-संख्या ५४ मूल्य -)
गीता-भवन-दोहा-संग्रह—पृष्ठ-संख्या ४८ मूल्य -)
स्वास्थ्य सम्मान और सुख—पृष्ठ-संख्या १२ मूल्य -)॥

ये पुस्तकें बालकोंके लिये सरल सदाचारयुक्त आदर्शोंसे परिपूर्ण और सस्ती हैं।

अन्य पुस्तकोंकी जानकारीके लिये सूचीपत्र अलग मुफ्त मँगवाइये।

पता—गीताप्रेस, पो॰ गीताप्रेस (गोरखपुर)